भगवान श्री रजनीश

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं···

सब हंसी-खेल है, सब लीला है ।

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं···

ध्यान भी खेल ही है, हंसी ही है ।

मुझसे लोग पूछते हैं कि यह आपका आश्रम कैसा ! यहां लोग हंसते हैं, नाचते हैं, खेलते हैं, कूदते हैं । और कैसा आश्रम हो सकता है ?

···हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं···

इसी हंसी-खेल में डूबे-डूबे, इसी मौज, इसी लीला में पगे-पगे नाथ के संग हो जाओगे । प्रतिपल फिर परमात्मा और तुम्हारा साथ रहेगा ।

—भगवान श्री रजनीश

जन्म-दिवस प्रकाशन : ११ दिसम्बर १९७९

अमी झरत, बिगसत कंवल	दरिया
गीता-दर्शन अध्याय ७–८	कृष्ण
हंसा तो मोती चुगैं	लाल
दरिया कहै सब्द निरबाना	दरियादास/बिहार वाले
गुरु-परताप साध की संगति	भीखा
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन	प्रश्नोत्तर
उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र	प्रश्नोत्तर
सपना यह संसार	पलटू
मृत्योर्मा अमृतं गमय	प्रश्नोत्तर
मन ही पूजा मन ही धूप	रैदास
महावीर-वाणी भाग : १	महावीर
महावीर-वाणी भाग : २	महावीर
देख कबीरा रोया	
शिक्षा में क्रांति	

भगवान श्री रजनीश

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं। अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियानं।
हंसै खेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ के संग।

— गोरखनाथ

रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड

सम्पादन एवं संयोजन : स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व
संकलन : स्वामी आनन्द स्वभाव

मूल्य : चार रुपये

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं
© रजनीश फाउन्डेशन, पूना
प्रकाशक : मा योग लक्ष्मी
सचिव, रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड
श्री रजनीश आश्रम,
१७, कोरेगांव पार्क, पूना ४११ ००१

मुद्रक : स्वामी तिलक भारती
चड्ढा प्रिन्टर्स
३३८—जी, बम्बई बाजार
मेरठ—२५० ००१

HASIBA KHELIBA DHARIBA DHYANAM
by Bhagwan Shree Rajneesh

भगवान श्री रजनीश

भगवान श्री रजनीश आत्मज्ञान को उपलब्ध सदगुरुओं में भी अनूठे हैं—सर्वथा अनूठे हैं। वे धर्म की किसी भी पुरानी या नयी परम्परा से नहीं बंधे हैं यद्यपि इतिहास के सभी बुद्ध पुरुष एवं धर्म उनके द्वारा फिर से जीवंत और समसामयिक हो उठे हैं। वे धर्म-साधन की किसी विशेष पद्धति की हिमायत नहीं करते हैं, सांख्य और भक्ति, योग और तन्त्र से लेकर ताओ, झेन, हसीद और सूफी, सभी पद्धतियों को आधुनिक मनुष्य के अनुकूल बनाकर उन पर वे एक साथ प्रयोग करवा रहे हैं। ऐसा प्रयोग धर्म के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था, धरती पर यह अभिनव प्रयोग पहली बार हो रहा है। और पहली बार भगवान श्री के हाथों अनगिनत छोटे-बड़े विविध धर्मों की जगह एक जामतिक धर्म का सूत्रपात हो रहा है।

'मैं किसी प्राचीन मार्ग पर नहीं हूं। मैं एक परम्परा का आरम्भ हूं, अंत नहीं। इसी मार्ग पर भविष्य में अनेकों आने वाले हैं।'

'मैंने अनेक गुरुओं के साथ काम किया, लेकिन मैं कभी शिष्य नहीं रहा। मैं एक यायावर था, जो अनेक जन्मों में घूमता हुआ अनेक परम्पराओं के, अनेक समूहों के, अनेक गुरुकुलों के, और अनगिनत पद्धतियों के सम्पर्क में आया, लेकिन कभी किसी से बंधा नहीं। उन्होंने बड़े प्रेम से मुझे अपनाया, लेकिन मैं उनका हिस्सा नहीं बना। ज्यादा से ज्यादा मैं उनका मेहमान रहा, रात भर का मेहमान। और यही कारण है कि मैं इतना सीख सका। तुम किसी एक मार्ग पर रहकर इतना नहीं सीख सकते, यह असम्भव है।'

'और यही कारण है कि भिन्न-भिन्न रास्तों से अनेक लोग मेरे पास आ रहे हैं। इस समय पूरी धरती पर ऐसा जमघट तुम्हें कहीं नहीं मिलेगा, जो यहां है। यहां यहूदी हैं, ईसाई हैं, मुसलमान हैं। यहां हिन्दू हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं। दुनिया भर के लोग जमा हैं यहां। और शीघ्र ही अधिकाधिक आने वाले हैं।'

अनुक्रम

श्री रजनीश आश्रम : ध्यान विधियां, रजनीश बुक-क्लब : डायरियां और कैलेण्डर १९८०, न्यूजलेटर : संन्यास : साहित्य-वितरण : ध्वनि-मुद्रित प्रवचन ।

१. मेडिसिन और मेडिटेशन

मेरे प्रिय आत्मन्

बीमारी तो मनुष्य पर आती है, लेकिन मनुष्य खुद भी एक बीमारी है । 'मैन इज ए डिजीज' । यही उसकी तकलीफ है, यही उसकी खूबी भी । यही उसका सौभाग्य है, यही उसका दुर्भाग्य भी । जिस अर्थों में मनुष्य एक परेशानी, एक चिंता, एक तनाव, एक बीमारी, एक रोग है, उन अर्थों में पृथ्वी पर कोई दूसरा पशु नहीं है । वही रोग ने मनुष्य को सारा विकास दिया है, क्योंकि रोग का मतलब यह है कि हम जहां हैं, वहीं राजी नहीं हो सकते । हम जो हैं, वही होने से राजी नहीं हो सकते । वह रोग ही मनुष्य की गति बना, रेस्टलेसनेस बना लेकिन वही उसका दुर्भाग्य भी है, क्योंकि वह जैसा है, परेशान है, अशांत है, दुखी है, पीड़ित है ।

मनुष्य को छोड़कर और कोई पशु पागल होने में समर्थ नहीं है । जब तक कि मनुष्य किसी पशु को पागल न करना चाहे, तब तक कोई पशु अपने से पागल नहीं होता, न्यूरॉटिक नहीं होता जंगल में पशु पागल नहीं होते, सर्कस में पागल हो जाते हैं । जंगल में पशु विक्षिप्त नहीं होते, अजायबघर में, 'जू' में विक्षिप्त हो जाते हैं ? कोई पशु आत्महत्या नहीं करता स्यूइसाइड नहीं करता, सिर्फ आदमी अकेला आत्महत्या कर सकता है ।

यह जो मनुष्य नाम का रोग है । इस रोग को सोचने,

समझने, हल करने के दो उपाय किये गये हैं। एक मेडीसिनल है उपाय–औषधिक। और दूसरा ध्यान है उपाय–मेडिटेशन। ये दोनों एक ही रोग का इलाज है। इसे थोड़ा समझना अच्छा होगा कि औषधिशास्त्र, मेडिसिन मनुष्य के एक-एक रोग से अलग-अलग व्यवहार करता है। ध्यान मनुष्य को 'एज ए होल बीमारी मानता है। एक-एक रोग को नहीं। ध्यान मनुष्य के व्यक्तित्व को बीमार मानता है औषधिशास्त्र मनुष्य के ऊपर बीमारियां आती हैं, चली जाती हैं, शारीरिक हैं ऐसा मानता है। लेकिन धीरे-धीरे यह दूरी कम होगी और मेडिकल' साइंस ने सोचना शुरू किया है कि डोंट ट्रीट द डिजीज, ट्रीट द पेशेन्ट मत करो। इलाज बीमारी का, बीमार का इलाज करो। यह बड़ी कीमती बात है। क्योंकि इसका मतलब यह है कि बीमारी भी बीमार के जीने का एक ढंग है, वे ऑफ लाइफ है। हर आदमी एक सा बीमार नहीं हो सकता। बीमारियां भी इंडिविजुएलिटी रखती हैं व्यक्तित्व रखती है। ऐसा नहीं है कि मैं क्षय रोग—टी० बी० से बीमार पडूं और आप भी पड़े तो हम दोनों एक ही तरह बीमार होंगे। हमारी टी०बी० भी दो तरह की होंगी, क्योंकि हम दो व्यक्ति हैं और हो सकता है कि जो इलाज मेरी टी० बी० को ठीक करे वह आपकी टी० बी० को ठीक न कर सके। इसलिए बात गहरे में बीमारी नहीं है, बहुत गहरे में बीमार है।

औषधिशास्त्र मेडिसिन—आदमी के ऊपर की बीमारियां को पकड़ता है। मेडीटेशन—ध्यान का शास्त्र—आदमी को गहराई से पकड़ता है। इसे ऐसा कह सकते हैं कि औषधि मनुष्य को ऊपर से स्वस्थ करने की चेष्टा करती है। ध्यान मनुष्य को भीतर से स्वस्थ करने की चेष्टा करता है। न तो ध्यान पूर्ण हो सकता है औषधिशास्त्र के बिना और न

औषधिशास्त्र पूर्ण हो सकता है ध्यान के बिना। असल में आदमी चूंकि दोनों है—भाषा ठीक नहीं है यह कहना की आदमी दोनों है। मनुष्य हजारों वर्षों से इस तरह सोचता रहा है कि आदमी का शरीर अलग है और आदमी की आत्मा अलग है। इस चिंतन के खतरनाक परिणाम हुए। एक परिणाम तो यह हुआ कि कुछ लोगों ने आत्मा को ही मनुष्य मान लिया, शरीर की उपेक्षा कर दी। जिन कौमों ने ऐसा किया उन्होंने ध्यान का तो विकास किया लेकिन औषधि का विकास नहीं किया। औषधि का विज्ञान न बना। शरीर की उपेक्षा कर दी तो गई। ठीक इसके विपरीत कुछ कौमों ने आदमी को शरीर मान लिया और उसकी आत्मा को इन्कार कर दिया। उन्होंने मेडिसिन और औषधि का तो बहुत विकास किया लेकिन ध्यान के सम्बन्ध में उनकी कोई गति न हो पायी। जब कि आदमी दोनों हैं एक साथ, कह रहा हूं कि भाषा में थोड़ी भूल हो रही है। जब हम कहते हैं कि दोनों हैं एक साथ तो ऐसा भ्रम जरा होता है कि दो चीजें हैं जुड़ी हुई नहीं!

असल में आदमी की शरीर और आदमी की आत्मा एक ही चीज के दो छोर हैं, अगर ठीक से कहें तो हम यह नहीं कह सकते कि 'बॉडी प्लस सोल' ऐसा आदमी है, ऐसा नहीं। आदमी साइको-सोमेटिक है, या सोमेटी-साइकिक है, आदमी मनस् शरीर है या शरीर-मनस् है। मेरी दृष्टि में आत्मा का जो हिस्सा हमारी इन्द्रियों को पकड़ में आ जाता है उसका नाम शरीर है और आत्मा का जो हिस्सा हमारी इन्द्रियों की पकड़ के बाहर रह जाता है उसका नाम आत्मा है। अदृश्य शरीर का नाम आत्मा है, दृश्य आत्मा का नाम शरीर है। ये दो चीजें नहीं हैं–ये दो अस्तित्व नहीं हैं, यह एक ही अस्तित्व

की तरंग अवस्थायें हैं, असल में दो-द्वैत, डयूआलिटी की धारणा ने मनुष्य जाति को बड़ी हानि पहुंचायी है, सदा हम दो को भाषा में सोचते रहे और मुसीबत हुई, पहले हम सोचते थे मेटर और एनर्जी। अब हम ऐसा नहीं सोचते। अब हम यह नहीं कह सकते कि पदार्थ अलग और शक्ति अलग। अब हम कहते हैं मेजर इज एनर्जी—अब हम कहते हैं, पदार्थ ही शक्ति सच तो यह है कि यह पुरानी भाषा हमें दिक्कत दे रही है। पदार्थ ही शक्ति ऐसा कहना भी ठीक नहीं है कुछ है, एक्स जो एक छोर पर पदार्थ दिखायी पड़ता है और दूसरी छोर पर एनर्जी, शक्ति दिखायी पड़ता है, ये दो नहीं है। यह एक ही ऊर्जा, एक अस्तित्व के दो छोर हैं।

ठीक जैसे ही आदमी का शरीर और उसकी आत्मा एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं, बीमारी दोनों छोरों में से किसी भी छोर से शुरू हो सकती है, शरीर के छोर से शुरू हो सकती है और आत्मा के छोर तक पहुंच सकती है। असल में जो भी शरीर पर घटित होता है, उसकी वाइब्रेशन्स, उसकी तरंगें आत्मा तक सुनी जाती है, इसलिए कई बार यह होता है कि शरीर से बीमारी ठीक हो जाती है और आदमी फिर भी बीमार बना रह जाता है। शरीर से बीमारी विदा हो जाती है और डॉक्टर कहता है कोई बीमारी नहीं है और आदमी फिर भी बीमार रह जाता है और बीमार मानने को राजी नहीं होता है कि मैं बीमार नहीं हूं। चिकित्सक के जांच के सारे उपाय कह देते हैं कि अब सब ठीक है, लेकिन बीमार कहे चले जाता है कि सब ठीक नहीं है। इस तरह के बीमारों से डॉक्टर बहुत परेशान रहते हैं, क्योंकि उनके पास जो भी जांच के सामान हैं वे कह देते हैं कि कोई बीमारी नहीं है।

लेकिन कोई बीमारी न होने का मतलब स्वस्थ होना नहीं है। स्वास्थ्य की अपनी 'पॉजिटिविटी' है। कोई बीमार का न होना सिर्फ नेगेटिव है। हम कह सकते हैं कि कोई कांटा नहीं है लेकिन उसका यह मतलब नहीं है कि फूल है, कांटा नहीं है उससे सिर्फ इतना ही पता चलता है कि कांटा नहीं है, लेकिन फूल का होना कुछ बात और है। लेकिन चिकित्सा-शास्त्र अब तक स्वास्थ्य क्या है इस दिशा में कुछ भी काम नहीं कर पाया। उसका सारा काम उस दिशा में है कि बीमारी क्या है तो अगर चिकित्सा-शास्त्र से हम पूछें कि स्वास्थ्य क्या है, तो वह परिभाषा करता है—डेफिनिशन करता है। उससे पूछें कि स्वास्थ्य क्या है, तो वह धोखा देगा। वह कहता है, जब कोई बीमारी नहीं होती तो जो शेष रह जाता है वह स्वास्थ्य है। यह धोखा है, परिभाषा नहीं है क्योंकि बीमारी की स्वास्थ्य से परिभाषा कैसे की जा सकती है? यह तो वैसे ही हुआ जैसे कांटों से कोई फूल की परिभाषा करे। यह तो वैसे ही हुआ जैसे कोई मृत्यु से जीवन की परिभाषा करे, यह तो वैसे ही हुआ जैसे कोई अन्धेरे से प्रकाश की परिभाषा करे। यह तो वैसे ही हुआ जैसे कोई स्त्री से पुरुष की परिभाषा करे या तो पुरुष से स्त्री की परिभाषा करे।

नहीं चिकित्सा-शास्त्र अब तक नहीं कह पाया, व्हाट इज हेल्थ?—स्वास्थ्य क्या है? वह उतना ही कह सकता है, व्हाट इज डिजीज; बीमारी क्या है? स्वभावतः! उसका कारण है। उसका कारण यही है कि चिकित्सा-शास्त्र बाहर से पकड़ता है, बाहर से बीमारी ही पकड़ में आती है। वह जो भीतर है मनुष्य का आंतरिक अस्तित्व–वह जो इनरमोस्ट बीइंग वह जो भीतरी आत्मा, स्वास्थ्य सदा वहीं से पकड़ा जा सकता

है, इसलिए हिन्दी का स्वास्थ्य शब्द बहुत अद्भुत है। अंग्रेजी का हेल्थ शब्द स्वास्थ्य का पर्यायवाची नहीं है, हेल्थ तो हीलिंग से बना है, उसमें बीमारी जुड़ी है, हेल्थ का तो मतलब है हील्ड—जो बीमारी से छूट गया, स्वास्थ्य का मतलब नहीं है जो बीमारी से छूट गया। स्वास्थ्य का मतलब है जो स्वयं में स्थित हो गया—'दैट वन हू हेज़ रीच्ड हिमसेल्फ'—वह जो अपने भीतर गहरे से गहरे में पहुंच गया। स्वास्थ्य का मतलब है, स्वयं में जो खड़ा हो गया, इसलिए स्वास्थ्य का मतलब हेल्थ नहीं है। असल में दुनिया की किसी भाषा का स्वास्थ्य के मुकाबले कोई शब्द नहीं है। दुनिया की सभी भाषाओं में जो शब्द है वह डिजीज या नो-डिजीज है, स्वास्थ्य की धारणा ही हमारे मन में बीमारी न होने की है, लेकिन बीमार न होना जरूरी तो है पर स्वस्थ होने के लिए पर्याप्त नहीं है, इट इज नेसेसरी बट नॉट सफीशिअंट—कुछ और भी चाहिए, दूसरे छोर पर वह जो भीतर हमारा अस्तित्व है वहां कुछ हो सकता है। बीमारी बाहर से शुरू हो तो भी भीतर तक उसकी प्रतिध्वनियां पहुंच जाती हैं, अगर मैं शांत झील में एक पत्थर फेंक दूं तो जहां पत्थर गिरता है, चोट वहीं पड़ती है, लेकिन तरंगें दूर झील के तट तक पहुंच जाती हैं, जहां पत्थर कभी नहीं पड़ा। ठीक जो हमारे शरीर पर घटना घटती है, तो तरंगें आत्मा तक पहुंच जाती है, और अगर चिकित्सा-शास्त्र सिर्फ शरीर का इलाज कर रहा है, तो उन तरंगों का क्या होगा जो दूर तट पर पहुंच गई ? अगर हमने पत्थर फेंका है झील में और हम उसी जगह केन्द्रित हैं जहां पत्थर गिरा और पानी में गड्ढा बना, और उन तरंगों का क्या होगा जो कि पत्थर से मुक्त हो गई, जिसका अपना अस्तित्व शुरू हो गया।

जब एक आदमी बीमार पड़ जाता है तो शरीर की चिकित्सा

के बाद में बीमारी से पैदा हुई तरंगें उसकी आत्मा तक प्रवेश कर जाती है, इसलिए अक्सर बीमारी लौटने की जिद्द करती है। बीमारी लौटने की जिद्द, उन तरंगों से पैदा होती है, जो उसकी आत्मा के अस्तित्व के अस्तित्व तक जुड़ जाती हैं और जिनका चिकित्सा शास्त्र के पास अब तक कोई उपाय नहीं है, इसलिए चिकित्सा-शास्त्र बिना ध्यान के सदा ही अधूरा ही रहेगा। हम बीमारी ठीक कर देंगे, बीमार को ठीक न कर पायेंगे। वैसे डॉक्टर के हित में है यह बीमार ठीक न हो। बीमारी भर ठीक होती रहे, बीमार लौटता रहे !

दूसरा जो छोर है वहां से भी बीमारी पैदा हो सकती है। सच तो यह है कि मैंने कहा वहां बीमारी है ही, जैसा मनुष्य है। जैसा मनुष्य है वहां एक टेन्शन है ही भीतर। जैसा मैंने कहा कोई पशु इस तरह डिजीज्ड नहीं है, इस तरह रेस्टलैस नहीं है, इस तरह बैचेन और तनाव में नहीं है, उसका कारण है। किसी पशु के मस्तिष्क में कुछ और होने का ख्याल नहीं है। कुत्ता-कुत्ता है। उसे होना नहीं है। आदमी को आदमी होना है, है नहीं। इसलिए हम किसी कुत्ते को यह नहीं कह सकते कि तुम थोड़े कम कुत्ते हो। सब कुत्ते बराबर कुत्ते होते हैं, लेकिन किसी आदमी से स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि वह थोड़ा कम आदमी है। आदमी पूरा पैदा नहीं होता। आदमी का जन्म अधूरा है। सब जानवर पूरे पैदा होते हैं। आदमी अधूरा पैदा होता है। कुछ काम है जो उसे करना पड़ेगा तब वह पूरा हो सकता है। वह पूरा न होने की स्थिति हैं। वह उसकी डिजीज हैं। इसलिए वह चौबीस घण्टे परेशान है। ऐसा नहीं कि आमतौर से हम सोचते हैं कि गरीब आदमी परेशान हैं। क्योंकि गरीबी है। लेकिन हमें पता नहीं है कि अमीर होने से परेशानी का तल बदलता है, परेशानी नहीं

बदलती । सच तो यह है कि गरीब इतना परेशान कभी नहीं होता है । क्योंकि गरीब को एक जस्टीफिकेशन होता है परेशानी का, कि मैं गरीब हूं । अमीर को वह जस्टीफिकेशन भी नहीं रह जाता । वह कारण भी नहीं बता सकता कि वह परेशान क्यों है ? और जब परेशानी अकारण होती है, तब परेशानी भयंकर होती है । कारण से राहत मिलती है । कॉन्सोलेशन मिलता है, क्योंकि कारण से यह भरोसा होता है कि कल कारण को अलग भी कर सकेंगे । लेकिन जब कोई बीमारी अकारण खड़ी हो जाती है तब कठिनाई शुरू हो जाती है । इसलिए गरीब मुल्कों ने बहुत दुख सहे हैं । जिस दिन ये अमीर होंगे उस दिन उन्हें पता चलेगा कि अमीर मुल्कों के अपने दुख हैं । हालांकि मैं पसन्द करूंगा, गरीब के दुख की बजाय अमीर का दुख ही चुनने योग्य है । अगर दुख ही चुनना हो तो अमीर का ही दुख चुनना चाहिए । आज अमरीका जितना बेचैन और परेशान है, उतना आज पृथ्वी पर कोई भी नहीं है । जितनी सुविधा अमरीका के पास है, उतनी कभी किसी समाज के पास नहीं थी । असल में अमरीका में पहली दफे डिसइल्यूजनमेंट हुआ । पहली दफे भ्रम टूट गया । अमरीका को पहली दफा पता चलना शुरू हुआ है कि कारण नहीं है । परेशानी कारण के वजह से नहीं है । आदमी परेशानी है । वह नयी परेशानी खोज लेता है । वह जो उसके भीतर एक अस्तित्व है, वह चौबीस घण्टे मांग कर रहा है । उसकी मांग—जो है, वह बेकार हो जाता है । वह जो नहीं है, उसको पाने की निरन्तर चेष्टा है ।

नीत्से ने कहीं कहा है कि आदमी एक सेतु है । 'ए स्पेस बिटवीन टू इम्पॉसिबिलिटीज' दो असम्भावनाओं के बीच में फैला हुआ पुल । निरन्तर असम्भव के लिए आतुर, पूरा होने

के लिए आतुर । इस पूरे होने की आतुरता से सारे धर्म पैदा हुए और यह जानना उपयोगी होगा कि एक दिन धर्मगुरु ही चिकित्सक था । पुरोहित ही चिकित्सक था । वह प्रीस्ट था, वही डॉक्टर था और आश्चर्य न होगा कि कल फिर स्थिति वही हो जाये । थोड़ा-सा फर्क होगा । अब जो चिकित्सक होगा वही पुरोहित हो सकता है ! अमरीका में वह घटना घटनी शुरू हो गयी, क्योंकि पहली दफा यह बात अमरीका में साफ हो गई कि सवाल सिर्फ शरीर का नहीं है बल्कि यह भी साफ होना शुरू हो गया है कि अगर शरीर बिल्कुल स्वस्थ हुआ तो मुसीबतें और बढ़ जायेंगी, क्योंकि पहली दफे भीतर के स्तर पर जो रोग है, उसका बोध शुरू हो जायेगा । हमारे बोध के भी तो कारण होते हैं । अगर मेरे पैर में कांटा गड़ा होता है तो मुझे पैर का पता चलता है । जब तक कांटा पैर में नहीं गड़ता पैर का पता नहीं चलता । और कांटा पैर में होता है । तो मेरी पूरी आत्मा 'ऐरो' हो जाती है, तीर बन जाती है पैर की तरफ । जैसे पैर को ही देखती है । कुछ और नहीं देखती । स्वाभाविक है । लेकिन पैर से कांटा निकल जाये, फिर यह आत्मा कुछ तो देखेगी । भूख तृप्त हो जाये, कपड़े ठीक मिल जायें, मकान व्यवस्थित हो जाये, तो पत्नी चाहिए ! मिल जाये—हालांकि इससे बड़ा दुख नहीं है दुनिया में । जिसको चाही पत्नी मिल जाये, उसके दुख का अन्त नहीं है । क्योंकि चाही गयी पत्नी न मिलने से कम से कम आशा में एक सुख रहता है, वह भी खो जाता है ।

मैंने सुना है एक पागलखाने के सम्बन्ध में । एक आदमी गया है उस पागलखाने को देखने । सुप्रिटेन्डेन्ट उसे घुमा रहा है, एक कटघरे में उसने पूछा कि इस आदमी को क्या हो गया है ? उस सुप्रिटेन्डेन्ट ने कहा यह पागल हुआ, क्योंकि इस

आदमी को जिस स्त्री से प्रेम था, वह उसे मिल नहीं पायी। दूसरे कटघरे में एक दूसरा आदमी सींकचे तोड़ने की कोशिश कर रहा है, छाती पीट रहा है, बाल नोंच रहा है। पूछा इस आदमी को क्या हो गया है ? तो उस सुप्रिंटेन्डेन्ट ने कहा कि इसको वही स्त्री मिल गयी, जो उसको नहीं मिल पायी ! यह इसलिए पागल हो गया है। पहला आदमी प्रेयसी न मिलने के कारण उसका फोटो छाती से लगाकर आनन्द में पागल था और दूसरा सिर फोड़ रहा था सींकचों में ! धन्यभागी हैं वे प्रेमी, जिनको प्रेयसियां नहीं मिल पायीं !

असल में जो हमें नहीं मिल पाता उसके लिए हम सदा ही आशा बांधकर जी पाते हैं। मिलते ही आशा टूट जाती है और हम खाली हो जाते हैं। जिस दिन चिकित्सक शरीर से आदमी को छुटकारा दिला देगा, उस दिन चिकित्सक को दूसरा काम पूरा करना पड़ेगा। जिस दिन हम आदमी को बीमारी से मुक्त कर देंगे, उस दिन हम आदमी को पहली दफे आध्यात्मिक बीमारी को पैदा करने की सिच्युएशन, स्थिति देंगे। वह पहली दफा भीतर परेशान होगा और सोचना शुरू करेगा कि अब सब ठीक हो गया ? लेकिन कुछ भी ठीक नहीं है।

यह बहुत आश्चर्य की बात नहीं है कि हिन्दुस्तान के भीतर चौबीस तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं, बुद्ध राजा के बेटे हैं; राम, कृष्ण ये सब शाही परिवारों से आये हैं। इनकी बेचैनी शरीर के तल से समाप्त हो गई है। इनकी बेचैनी भीतर के तल से शुरू हो गयी है।

मेडिसिन आदमी को ऊपर से शरीर की व्यवस्था और बीमारी से मुक्त करने की चेष्टा है। लेकिन ध्यान रहे, आदमी सब बीमारी से मुक्त होकर भी आदमी होने की बीमारी से

मुक्त नहीं होता। वह जो आदमी होने की बीमारी है, वह असम्भव की चाह है। वह जो आदमी होने की बीमारी है, वह किसी भी चीज से तृप्त न होना है। वह जो आदमी होने की बीमारी है, वह सदा जो मिल जाये उसे व्यर्थ कर देना है और जो नहीं मिला, उसकी सार्थकता में लग जाना है।

वह आदमी होने की बीमारी का इलाज ध्यान है। बीमारियों का इलाज चिकित्सक के पास है। चिकित्सक के पास है, लेकिन वह जो आदमी होने की बीमारी है, उस बीमारी का इलाज ध्यान के पास है। और उस दिन चिकित्सा शास्त्र पूरा हो सकेगा, जिस दिन हम आदमी के भीतर के छोर को भी समझ लें और उसके साथ भी शुरू कर दें, क्योंकि मेरी अपनी समझ ऐसी है कि भीतरी छोर पर वह जो बीमार आदमी बैठा हुआ है, वह हजारों तरह की बीमारियां बाहर के छोर पर भी पैदा करता है।

जैसे मैंने कहा, शरीर पर बीमारी पैदा हो तो उसके वाइब्रेशन्स, उसकी तरंगें अन्तरात्मा तक पहुंच जाती है। अगर अन्तरात्मा बीमार हो तो उसकी तरंगें भी शरीर के छोर तक आती हैं। इसलिए तो दुनिया में हजारों तरह की चिकित्सायें चलती हैं। हजारों तरह की पैथीज हैं दुनिया में ! यह हो नहीं सकता। यह होना नहीं चाहिए, अगर पैथोलॉजी एक साइंस है तो हजारों तरह की नहीं हो सकती। लेकिन हजारों तरह की हो सकती है, क्योंकि आदमी की बीमारियां हजारों तरह की हैं। कुछ बीमारियां को ऐलोपैथी फायदा पहुंचा ही नहीं सकती। जो बीमारियां भीतर से बाहर की तरफ आती हों, उनके लिए एलोपैथी एकदम बेमानी हो जाती है। जो बीमारियां बाहर से भीतर की तरफ जाती हैं, उनके लिए एलोपैथी बड़ी सार्थक हो जाती है। जो बीमारियां भीतर से

बाहर की तरफ आती हों वे बीमारियां शारीरिक होती ही नहीं। शरीर पर केवल प्रकट होती है। उनके होने का तल सदा ही साइकिक या और गहरे में स्प्रीचुअल होता है। या तो मानसिक होता है या आध्यात्मिक होता है।

अब जिस आदमी को मानसिक बीमारी है, इसका अर्थ हुआ कि उसको शारीरिक चिकित्सा कोई फायदा नहीं पहुंचा सकेगी। शायद नुकसान पहुचाएं, क्योंकि चिकित्सा कुछ करेगी आदमी के साथ। और उसका कुछ करना—अगर फायदा नहीं पहुंचाता तो नुकसान पहुंचायेगा। सिर्फ वही चिकित्सायें नुकसान नहीं पहुंचातीं जो फायदा भी नहीं पहुंचा सकतीं। जैसे होमियोपैथी कोई नुकसान नहीं पहुंचाती लेकिन होमियोपैथी से फायदा होता है। नुकसान नहीं पहुंचा सकती, इसका यह मतलब नहीं कि होमियोपैथी से फायदा नहीं होता। फायदा होना दूसरी घटना है। ये दो चीजें हैं अलग-अलग। फायदा होता है। फायदा इसलिए होता है कि वह आदमी अगर बीमारी को मानसिक तल पैदा कर रहा है, तो उस बीमारी के लिए फॉल्स मेडिसिन की जरूरत है। उसे झूठी मेडिसिन की जरूरत है, उसे सिर्फ भरोसा भर आ जाये। वह राख से भी आ सकता है।

और अभी तो बहुत प्रयोग चलते हैं, जिसको आप 'औषधि-आभास' कहते हैं। अगर दस मरीज एक ही तरह की बीमारी के मरीज हैं, उनमें तीन को एलोपैथी चिकित्सा दी जाये, तीन को होमियोपैथी दी जाये, तीन को नेचरोपैथी दी जाये, तो बड़े मजे की बात यह है कि सब पैथियां बराबर ठीक करती हैं और बराबर मारती हैं। अनुपात में कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता। तब थोड़ा सोचने जैसा मामला हो जाता है कि बात क्या है?

मेरी दृष्टि में एलोपैथी अकेली वैज्ञानिक चिकित्सा है। लेकिन क्योंकि आदमी वैज्ञानिक है, इसलिए वैज्ञानिक चिकित्सा अकेला काम करती है। एलोपैथी अकेली विज्ञान के ढंग से आदमी के शरीर के साथ व्यवहार करती है। लेकिन आदमी चूंकि भीतर से काल्पनिक भी है, प्रॉजेक्टिव भी है, प्रक्षेप भी करता है, इसलिए एलोपैथी पूरा काम नहीं कर पाती। सच तो यह है कि जिस मरीज पर एलोपैथी काम नहीं कर पाती, वह मरीज अवैज्ञानिक ढंग से बीमार है। बीमार होने का मतलब क्या है? यह शब्द बड़ा अजीब-सा लगेगा, क्योंकि वैज्ञानिक ढंग की चिकित्सा हो सकती है, अवैज्ञानिक ढंग की चिकित्सा हो सकती है। मैं आपसे कह रहा हूं कि अवैज्ञानिक ढंग से भी बीमार होना होता है। असल में जो बीमारी मनस् के तल से शुरू होती है और शरीर पर आती है, वह वैज्ञानिक रूप से हल नहीं होती।

एक स्त्री को मैं जानता हूं। युवती है, उसकी आंखें अंधी हो गई हैं, लेकिन जो अंधापन था वह साइकोलॉजिकल ब्लाइन्ड-नेस थी। उसकी आंखें सच में अंधी नहीं हो गई थीं। जानकारों ने कहा कि आंखें बिल्कुल ठीक है। लड़की धोखा दे रही है। लेकिन लड़की बिल्कुल धोखा नहीं दे रही थी। क्योंकि आप उसको आग की तरफ छोड़ दें, तो वह आग की तरफ भी चली जाती थी। वह दीवार से भी टकराती थी और सिर भी फोड़ लेती थी। वह लड़की धोखा नहीं दे रही थी, आंखें उसकी सच में ही अंधी हो गई थीं, लेकिन चिकित्सक की पकड़ के बाहर थी बीमारी।

मेरे पास उसको लाये थे, मैंने उसको समझाने की कोशिश की। पता चला कि किसी से उसका प्रेम है। और घर वालों ने उसके प्रेमी से उसका मिलना-जुलना बन्द कर दिया था।

जब मैं निरन्तर पूछता रहा तो दो चार दिन बाद उसने कहा कि मुझे तो सिवाय उसके, दूसरे किसी को देखने की इच्छा नहीं। यह संकल्प के सिवाय उसके अब देखना ही नहीं है किसी को, इतनी तीव्रता से अगर मन में संकल्प उठे कि अब उसके सिवाय देखने का कोई अर्थ ही न रहा, तो आंखें साइकोलॉजिकली ब्लाइन्ड हो जायेंगी। आखें अंधी हो जायेंगी, आंखें देखना बन्द कर देंगी। यह आंख की एनाटॉमी को देखकर नहीं समझा जा सकेगा; क्योंकि आंख की एनाटॉमी बिल्कुल ही ठीक होगी, आंख का यन्त्र बिल्कुल ही ठीक होगा। सिर्फ आंख का देखने वाला जो परदा था, वह सरक गया। उसने हटा लिया अपना हाथ। पर हम रोज अनुभव करते हैं, लेकिन हमारे ख्याल में नहीं है! हमारे शरीर का यन्त्र तभी तक काम करता है, जब तक हम पीछे मौजूद होते हैं।

मैंने उसके घर के लोगों को कहा कि आप एक काम करें। मैं समझता हूं उसने सोचा था कि उसकी आंख जिसे देखने के लिए हैं, अगर आपने उसे देखने नहीं दिया तो उसने 'पॉसिबल स्यूइसाइड' कर ली है—आंखों की आत्महत्या कर ली है। और कुछ नहीं हो गया है, आंशिक आत्महत्या में गुजर गयी है यह लड़की। आप उसके प्रेमी को मिलने दें। उन्होंने कहा; इससे आंख का क्या सम्बन्ध है? मैंने कहा एक कोशिश करके तो देखो। और जैसे ही उसको खबर कर दी गई कि उसके प्रेमी से मिलने की उसको आज्ञा है। और उसे खबर की गई कि पांच बजे उसका प्रेमी मिलने आयेगा। वह दरवाजे के बाहर आकर खड़ी हो गई। उसकी आंख ठीक थी! नहीं; यह धोखा नहीं है; डिसेप्शन नहीं है।

अब एक युवक खेल रहा है—हॉकी या फुटबॉल के मैदान पर, उसके पैर में चोट लग गयी है। खून बह रहा है। उसे

कोई पता नहीं है। सबको दिखाई पड़ रहा है देखने वालों को, उसे भर दिखाई नहीं पड़ रहा है! फिर खेल बन्द हो गया आधे घण्टे बाद। पैर पकड़कर बैठ गया और चिल्ला रहा है कि मुझे चोट कब लग गयी? बहुत दर्द है। अब आधा घण्टा हो गया, चोट लगे हुआ! क्या इसके पैर में चोट लगी? इसके पैर का यन्त्र बिल्कुल ठीक है; क्योंकि आधे घण्टे बाद उसने खबर दी। आधे घण्टे पहले खबर क्यों न मिल सकी? उसकी अटेन्शन वहां मौजूद नहीं थी। उसका ध्यान खेल में था और ध्यान इतना था खेल में कि पैर के होने लायक कोई ध्यान की मात्रा न बची थी, जो पैर में दौड़ जाये। पैर खबर देता रहा होगा। पैर के स्नायुओं ने झटके दिये होंगे। पैर ने खटखटाये होंगे अपने तार। पैर ने अपने एक्सचेंज को खबर दी होगी। लेकिन वह जो एक्सचेंज पर आदमी था वह सोया हुआ था। वह गहरी नींद में था, या वह कहीं और मौजूद था। वह एब्सेंट था। वह उपस्थित नहीं था। आधे घण्टे बाद जब आया वापस, तब पता चल सका कि पैर में चोट है।

अब तो हिप्नोटिज्म ने प्रयोग किए हैं कि हम समझ सकते हैं कि धोखे का कोई उपाय नहीं है। यह मैं अपने किए हुए प्रयोग की बात कह रहा हूं। अगर ठीक से सम्मोहित व्यक्ति के हाथ में, गहरे सम्मोहन में गए व्यक्ति के हाथ में साधारण कंकड़ उठाकर रख दिया जाये और कहा जाय कि अंगारा है तो फेंकेगा, चिल्लायेगा, चीखेगा कि मैं जल गया। यहां तक ठीक है, लेकिन हाथ पर फफोला भी आ जायेगा, तब दिक्कत शुरू होगी। अगर हाथ पर, मन में एक ख्याल से कि अंगारा रख दिया है, फफोला आ सकता है। तो फिर उस फफोले का इलाज आपके शरीर से शुरू करना खतरनाक है। इस फफोले का इलाज मन की तरफ से शुरू करना पड़ेगा।

आदमी का एक ही छोर हमारे ख्याल में है और इसलिए हमने धीरे-धीरे शरीर की बीमारियां तो कम कर लीं; लेकिन मन की बीमारियां बढ़ती चली गई हैं । अब तो, जो बहुत वैज्ञानिक भाषा में सोचते हैं, वे भी एक बात में राजी है कि कम से कम फिफ्टी-फिफ्टी का अनुमान हो गया है कि पचास प्रतिशत बीमारियां मानसिक हैं । हिन्दुस्तान में नहीं, क्योंकि मानसिक बीमारी के लिए मन का भी सहयोग जरूरी है । हिन्दुस्तान में अभी भी पिचान्नवे प्रतिशत बीमारियां शारीरिक हैं, लेकिन अमरीका में अनुपात बढ़ता जा रहा है ।

मानसिक बीमारी का मतलब यह है कि उसका जन्म होता है भीतर और वह फैलती है बाहर की तरफ । मानसिक बीमारी आउट-गोइंग है, शारीरिक बीमारी 'इन-गोइंग' है । अगर मानसिक बीमारी का आपने शारीरिक इलाज किया तो मानसिक बीमारी दूसरा रास्ता तत्काल खोजेगी । इसलिए मानसिक बीमारी के सिर्फ हम झरने बन्द कर सकते हैं एक जगह से, दूसरी जगह से, तीसरी जगह से, पर चौथी जगह से निकलेगी, पांचवीं जगह से निकलेगी । और जहां पर कमजोर हिस्सा होगा व्यक्तित्व का, वहां से निकलनी शुरू हो जायेगी । इसलिए चिकित्सक कई दफे बीमारी ठीक करने में सहयोगी नहीं होता, एक बीमारी की हजार बीमारी बना देने में सहयोगी होता है । जो एक धार से निकल सकती है बात, वह अनेक धाराओं से निकलने लगती है, क्योंकि जगह-जगह हम रुकावट लगा देते हैं ।

ध्यान मेरे लिए दूसरी छोर की चिकित्सा है । स्वभावतः औषधि निर्भर करेगी पदार्थ पर, ध्यान निर्भर करेगा चेतना पर । ध्यान की कोई गोली नहीं हो सकती, हालांकि कोशिश चलती हैं । एल० एस० डी० है, मैस्कलीन है, मरीजुआना है ।

हजारों उपाय चलते हैं कि ध्यान की भी हम कोई गोली बना लें । लेकिन ध्यान की कोई गोली हो नहीं सकती । असल में ध्यान की गोली बनाने की कोशिश वही पुरानी जिद्द है कि हम इलाज बाहर ही से करेंगे । सब इलाज हम बाहर से ही करेंगे ! अगर भीतर चित्त भी रुग्ण होगा तो भी हम इलाज हम बाहर से ही करेंगे; इलाज हम भीतर से नहीं करेंगे । मेस्कलीन हो, एल० एस० डी० हो, और तरह की ड्रग्स हों जो धोखा दे सकते हैं स्वास्थ्य का, आन्तरिक स्वास्थ्य का, लेकिन वह आन्तरिक स्वास्थ्य बना नहीं सकते । कोई रासायनिक ढंग से मनुष्य के अंतिम छोर पर पहुंच नहीं सकते । जितने हम भीतर जाते हैं, उतनी ही रासायनिक गति-विधि क्षीण होती चली जाती है । जितने ही हम मनुष्य के भीतर जाते हैं उतना ही फिजिकल, मैटिरियल एप्रोच कम अर्थ के रह जाते हैं । नॉन-मैटिरियल एप्रोच, कहना चाहिए कि एक साइकिक, मानसिक एप्रोच ।

लेकिन अभी तक नहीं हो पाया कुछ प्रोजुडिसिस के कारण, कुछ पक्षपातों के कारण । और मजे की बात है कि डॉक्टरी दुनिया के दो तीन मोस्ट ऑर्थोडॉक्स प्रोफेशन में से एक है । जो लोग दुनिया में बहुत आर्थोडॉक्स हैं, उनमें प्रोफेसर्स और डॉक्टर्स अग्रिम हैं । ये जल्दी पुरानी धारणायें नहीं छोड़ते । उसका कारण भी है । सर्व स्वाभाविक कारण है । बड़ा स्वाभाविक कारण तो यह है कि डॉक्टर और प्रोफेसर्स अगर जल्दी पुरानी धारणायें छोड़ें, बहुत फ्लेक्सीबिल हों, तो प्रोफेसर्स बच्चों को सिखाने में, मुश्किल में पड़ जायेंगे । चीजें सिद्ध होना चाहिए तो वे ठीक से सीख पाते हैं । तय होना चाहिए, अनिश्चित नहीं होना चाहिए । तरल नहीं होना चाहिए, लिक्विड नहीं होना चाहिए, ठोस होना चाहिए, तो उनको सिखाते वक्त

कॉन्फिडेन्स होता है ।

और प्रोफेसर्स को जितनी कॉन्फिडेन्स की जरूरत होती है, उतनी चोर डाकुओं को भी नहीं होती ! उसे आत्मविश्वास होना चाहिए कि जो वह कह रहा है, वह एब्सोल्यूटली ठीक है और जिसको भी ऐसी प्रोफेशनल जरूरत है कि वह पूर्णरूप से ठीक है, वह आर्थोडॉक्स हो जाते हैं । इससे भारी नुकसान पहुंचता है, क्योंकि शिक्षा सबसे कम ऑर्थोडॉक्स होनी चाहिए। नहीं तो विकास में बाधा डालेगी, इसलिए दुनिया में कोई शिक्षक आमतौर से आविष्कारक नहीं होते, सारी यूनिवर्सिटीज में इतने प्रोफेसर्स हैं, लेकिन आविष्कार यूनिवर्सिटीज के बाहर के लोग करते हैं, भीतर के नहीं ! नोबल प्राइज पाने वाले सत्तर प्रतिशत से ऊपर के लोग यूनिवर्सिटी के बाहर के लोग हैं ।

दूसरा धन्धा जो बहुत ही ऑर्थोडॉक्स से भरा है, वह डॉक्टर का है। उसका भी प्रोफेशनल कारण है; क्योंकि उसे बहुत जल्दी निर्णय लेना पड़ता है । मरीज अभी मर रहा है, अगर बहुत सोच-विचार करे तो सोच-विचार तो हो जायेगा, लेकिन मरीज नहीं बचेगा । अगर वह बहुत अन्-ऑर्थोडॉक्स हो और बहुत नये-नये प्रयोग करता हो तो खतरा है । तत्काल जिसे उत्तर खोजने हैं, वह हमेशा पुराने ज्ञान पर निर्भर होते हैं, नये ज्ञान की झंझट में नहीं पड़ता। जिसे तत्काल रेडीमेड उत्तर चाहिए चौबीस घण्टे, उसे हमेशा पुराने ज्ञान पर निर्भर रहना पड़ता है । इसलिए मेडिकल साइंस, मेडिकल टीचर्स से करीब-करीब तीस साल पीछे चलता है । और इसलिए बहुत से मरीजों को बेकार मरना पड़ता है, क्योंकि सच में जो अब यहीं होना चाहिए, वह होता चला जाता है । पर यह प्रोफेशनल दिक्कत है । और इसलिए एक मान्यता है, उसकी औषधि पर

भरोसा है, केमिकल पर ज्यादा भरोसा है, बजाय चेतना के । कॉन्शसनेस से ज्यादा केमिस्ट्री महत्वपूर्ण है । इसका बड़ा घातक परिणाम हो रहा है क्योंकि जब तक केमिस्ट्री महत्वपूर्ण है, तब तक कॉन्शसनेस पर प्रयोग नहीं किये जा सकते ।

इधर कुछ दो-चार प्रयोग की बात मैं करना चाहूंगा, जिनसे ख्याल आ सके । अब जैसे, मां से बच्चा पैदा हो तो 'पेनलेस चाइल्ड बर्थ' पुरानी समस्या है । पुरानी समस्या है कि मां से बच्चा बिना दर्द के कैसे पैदा हो जाये ? हालांकि धर्मगुरु इसके खिलाफ हैं कि बिना दर्द के बच्चा पैदा हो, असल में धर्म-गुरू इसके ही खिलाफ हैं कि दुनिया बिना दर्द की हो जाये, क्योंकि दुनिया जितना बिना दर्द की होगी, धर्म-गुरू एकदम 'आउट ऑफ प्रोफेशन' हो जायेगा, उसका कोई भी मतलब नहीं रह जायेगा । दर्द है, दुख है, पीड़ा है, पुकार है । शायद भगवान भी एक दिन निगलेक्टेड हो जाये, अगर दुनिया में दुख न हो, शायद ही कोई जाकर प्रार्थना करे; क्योंकि दुख में ही उसका स्मरण करते हैं। धर्मगुरु निरंतर खिलाफत में है, वह कहता है, मां को जो दर्द होता है बच्चे की प्रसव-पीड़ा में, वह नेचरल है, वह होना ही चाहिए, यह भगवान की व्यवस्था है, यह बात जुड़ी है ।

कोई भगवान की व्यवस्था बच्चे के जन्म के समय दर्द की नहीं है । चिकित्सक विश्वास करता है कि कोई दवा दे दी जाये, कोई केमिकल व्यवस्था की जाये, एनस्थीसिया दो, जिससे कि पेनलेस बर्थ हो । ऐसी चिकित्सा के जो उपाय हैं, वे शरीर से शुरू होते हैं, यानी कि हम शरीर को ऐसी हालत में ला दें कि मां को पता न चले कि दर्द हो रहा है। स्वभावतः स्त्रियां खुद भी उनका प्रयोग कर रही हैं हजारों साल से । इसलिए दुनिया में पचहत्तर प्रतिशत के करीब बच्चों

को रात में पैदा होना पड़ता है । दिन में मुश्किल है पैदा होना, क्योंकि दिन में स्त्री बहुत सचेत होती है, रात में नींद में सो जाती है, रिलेक्स हो जाती है, इसलिए सत्तर-पचहत्तर प्रतिशत बच्चों को सूरज की रोशनी में पैदा होने का मौका नहीं मिलता, उनको अन्धेरे में ही पैदा होना पड़ता है । स्त्री नींद में होती है तो रिलेक्स हो जाती है तो बच्चे को जन्म देने में थोड़ी आसानी पड़ती है । मां बच्चे को जन्म के साथ ही बाधा देना शुरू कर देती है, बाद में तो बहुत बाधायें देती है, लेकिन जन्म के पहले क्षण से ही बाधायें देनी शुरू कर देती है !

अब एक उपाय तो यह है कि हम एक केमिकल प्रयोग करें और शरीर को ऐसा शिथिल कर दें, जैसा वह नींद में हो जाता है । यह उपाय काम में लाया जा रहा है, इसके अपने खतरे हैं । सबसे बड़ा खतरा तो यह है कि हम आदमी की चेतना पर जरा भी भरोसा नहीं करते । और धीरे-धीरे जब आदमी की चेतना पर भरोसा कम किया जाता है तो आदमी की चेतना खोती चली जाती है ।

लोजिम नाम के एक चिकित्सक ने आदमी की चेतना पर भरोसा किया । और हजारों स्त्रियों को दुख और दर्द से रहित बच्चे पैदा करवाने की व्यवस्था की है । यह 'कॉन्शस कोऑपरेशन' की मेथड है कि जब बच्चा पैदा हो तो मां मेडिटेटिवली, ध्यानपूर्ण ढंग से बच्चे को जन्म देने में सहयोगी बने । वह राजी हो जाये, लड़े न, रेजिस्ट न करे । जो दर्द है वह बच्चे के पैदा होने से नहीं होता; वह मां की लड़ाई से पैदा होता है । वह पूरे वक्त जन्म देने के यंत्र को सिकोड़ रही है । वह डर रही है कि दर्द होगा । भयभीत है कि बच्चा पैदा न हो जाये । यह 'फियर सेन्टर्ड रजिस्टेंस' उसको—बच्चे को—पैदा

होने से रोक रहा है और बच्चा पैदा होना चाह रहा है—इन दोनों के बीच लड़ाई चल रही है—मां और बेटे के बीच लड़ाई चल रही है ! उस लड़ाई में दर्द है । स्वाभाविक नहीं है, सिर्फ संघर्ष है, रेजिस्टेन्स है ।

इस रेजिस्टेन्स को हम दो तरह से कम कर सकते हैं । शरीर की तरफ से हम मां को बेहोश कर दें । लेकिन ध्यान रहे, जो मां बेहोशी में अपनी बच्चे को जन्म देगी वह पूरे अर्थों में मां कभी न होने पायेगी; क्योंकि उसका कारण है । बच्चा पैदा होता है तो बच्चा ही पैदा नहीं होता, उसके साथ मां भी पैदा होती है—बच्चे का पैदा होना दोहरा जन्म है । एक तरफ बच्चा पैदा होता है, दूसरी तरफ एक साधारण स्त्री मां बन जाती है, जो उसके पहले वह नहीं थी । अगर बेहोशी में बच्चा पैदा हुआ तो मां और उसके बच्चे के बीच का बुनियादी सम्बन्ध हमने विकृत किया है । मां पैदा नहीं हो जायेगी, नर्स रह जायेगी पीछे ।

मैं राजी नहीं हूं कि केमिकल ढंग से या शारीरिक ढंग से मां की बेहोशी में बच्चे को जन्म दिया जाये । मां पूरी कॉन्शस होनी चाहिए, अपने बच्चे के जन्म के क्षण में, क्योंकि उसी कॉन्शसनेस में मां का भी जन्म होगा । अगर यह दूसरी बात सही मालूम पड़े तो इसका मतलब यह हुआ कि मां की चेतना की ट्रेनिंग होनी चाहिए बच्चे के जन्म के वक्त । मां को सोच लेना चाहिए कि जन्म के क्षण को, वह ध्यान पूर्ण ढंग से ले । ध्यान के अर्थ मां के लिए दो होंगे । एक तो वह रेजिस्ट न करे, विरोध न करे । जो हो रहा है, उसके होने में सहभागी हो । जैसे नदी बह रही है, जहां गड्ढा मिल जाता है, वहीं बह जाती । जैसे पत्ते गिरते हैं, कहीं कुछ खबर नहीं होती । वृक्ष से सूखा पत्ता नीचे गिर रहा है । ऐसी पूरी तरह जो

घटना घट रही है, उसमें सहभागी हो—टोटल कोऑपरेशन, पूर्ण सहयोगी। अगर मां अपने बच्चे को जन्म देते वक्त पूरी तरह सहयोगी हो जाये, कोई विरोध न करे, कोई भय न करे और जन्म की जो घटना घट रही है, उनमें पूरे ध्यानपूर्ण होकर रसलीन हो जाये तो पेनलेस बर्थ हो जायेगी, दर्द उससे विदा हो जायेगा। और यह वैज्ञानिक आधारों पर कह रहा हूं हजारों प्रयोग किए गये हैं इस आधार के ऊपर। वह दर्द-मुक्त हो जायेगी। और ध्यान रहे, इसके बड़े व्यापक परिणाम होंगे।

पहला तो जिससे हमें दर्द मिले, पहले ही क्षण में उसके प्रति हमारा दुर्भाव बनना शुरू हो जाता है। जिससे हमारा संघर्ष हो, पहले ही क्षण में उससे हमारी दुश्मनी की यात्रा शुरू हो जाती है। उससे हमारी मैत्री के सम्बन्ध में बाधा पड़ जाती है। जिससे हमारा पहले ही कॉन्फ्लिक्ट शुरू हो गया हो, उसके साथ ऊपरी 'कोऑपरेशन' बांधना बहुत मुश्किल हो जायेगा। लेकिन जिस क्षण हम सहयोग से और सचेतन रूप से बच्चे को जन्म दे पायें··· ।

यह बड़े मजे की बात है। अब तक हमने 'प्रसव-पीड़ा' शब्द सुना है, 'प्रसव-आनंद' शब्द नहीं, क्योंकि आनंद कभी हुआ नहीं। लेकिन अगर पूर्ण सहयोग हो तो प्रसव-आनंद भी शुरु हो जायेगा। तो मैं 'पेनलेस बर्थ' के पक्ष में नहीं हूं, ब्लिस-फुल बर्थ के पक्ष में हूं। अगर हम चिकित्सा का उपयोग करें तो ज्यादा-से-ज्यादा, एट द मोस्ट, पेनलेस बर्थ हो सकता है। लेकिन ब्लिसफुल बर्थ नहीं। लेकिन अगर चेतना की तरफ से हम शुरू करें तो एक आनन्दपूर्ण जन्म हो सकता है। और हम पहली ही घड़ी में मां और बेटे के बीच एक आन्तरिक सम्बन्ध बांध सकेंगे।

यह मैंने सिर्फ एक उदाहरण के लिए बात कही कि भीतर से भी कुछ किया जा सकता है। जब भी हम बीमार हैं, तब हम सिर्फ बाहर से लड़ रहे हैं। भीतर से वह आदमी सच में बीमारी से लड़ने को राजी है या नहीं, उसकी हमें कोई चिंता नहीं है। हो सकता है यह बीमारी निमंत्रित हो। निमंत्रित बीमारियां बड़ी संख्या में हैं। असल में बहुत कम बीमारियां हैं, जो आती हैं। बहुत अधिक बीमारियां हैं, जो बुलायी जाती हैं। लेकिन हमने निमंत्रण बहुत पहले दिया होता है, आती हैं बहुत देर से, इसलिए हम सम्बन्ध नहीं जोड़ पाते।

हजारों साल तक हजारों कौमें दुनियां में ऐसी थीं, जिनको यह ख्याल नहीं था कि काम-संभोग से बच्चे के पैदा होने का कोई सम्बन्ध है, क्योंकि नौ महीने का फासला था। कार्य-कारण को कार्य के असर से इतनी दूर रखना मुश्किल था। फिर सभी काम-सम्भोग बच्चे के पैदा होने में फलित नहीं होते, इसलिए भी कोई वजह नहीं थी सोचने की। यह तो बहुत बाद में ख्याल आया कि वह जो नौ महीने पहले घटना घटी है, वह नौ महीने बाद फलित हो रही है। उसके साथ कौज एण्ड इफेक्ट का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। हम भी अपनी बीमारियां को कभी बुलाते हैं, कभी वे आती हैं। इसमें फर्क पड़ जाता है। इसलिए हम सम्बन्ध जोड़ नहीं पाते।

अब एक आदमी के सम्बन्ध में मैंने सुना है कि वह बैंकरप्ट होने की हालत में है। उसकी हालत दिवाला निकल जाने की है। वह बाजार जाने से डरता है। दुकान जाने से डरता है। रास्ते से निकलने से डरता है। अचानक एक दिन सुबह अपने बाथरूम से निकल रहा है और गिर पड़ा और पैरेलाइज्ड हो गया। उसको लकवा-लग गया। अब उसको सब चिकित्सा चल रही है। लेकिन हम यह सोच नहीं पा रहे हैं कि यह

आदमी पैरेलाइज्ड होना चाहता था। इसने कॉन्शसली ऐसा सोचा नहीं, यह सवाल नहीं है। इसने ऐसी धारणा बनाई या नहीं, यह सवाल नहीं है कि लकवा उसे लग जाये। शायद ऐसी कोई धारणा नहीं बनाई, लेकिन कहीं चित्त में, अनकॉन्शस में, यह चाहता था कि बाजार न जाना पड़े, दुकान न जाना पड़े, रास्ते पर न निकलना पड़े।

दूसरे वह यह भी चाहता था कि किसी तरह उस पर आक्रमण बन्द हो और सहानुभूति शुरू हो—यह उसकी गहरी चाह थी। अब इसका शरीर उसको सहयोग देगा। शरीर सदा हमारे मन के पीछे छाया की तरह चल रहा है। वह सहयोग देगा। मन इन्तजाम कर लेगा। असल में मन के इंतजाम का हमें पता नहीं। अगर आप दिन भर उपवास करें तो आप रात भोजन करेंगे। मन रात में इन्तजाम कर देगा। सपने में, वह कहेगा, दिन भर भूखे रहे, बहुत परेशान हुए। चलो राजा के घर निमन्त्रण करवा देता हूं। तो रात आप भोजन कर लेंगे। मन इन्तजाम कर देगा; वह कहेगा जो शरीर से नहीं हो पाया, वह मन से किये देते हैं। रात सपने हम अधिकतम ऐसे ही देख रहे हैं, जो सब्स्टीट्यूट हैं। जो हम दिन में नहीं कर पाये, वह हम रात में कर रहे हैं। मन इन्तजाम कर रहा है। अगर रात में आपको जोर से ख्याल उठा है कि पेशाब कर आऊं तो मन घंटी बजा रहा है। कुछ इन्तजाम करेगा। वह आपको बाथरूम भेज देगा सपने में, और आपको ब्लैडर पर जोर कम पड़ना शुरू हुआ है। ख्याल में आ जायेगा कि ठीक है, बाथरूम हो आये हैं। ठीक हो गया। नींद न टूटे, इसलिए मन इन्तजाम कर देगा। मन चौबीस घंटे आपकी, जाने-अनजाने इच्छाओं के लिए इन्तजाम कर रहा है।

अब यह आदमी लकवा खाकर गिर गया। अब हम उसका

इलाज करने में लगे हुए हैं। हमारी सब दवाइयों से इसे नुकसान पहुंचाने की पूरी सम्भावना है। क्योंकि उसको लकवा है ही नहीं, वह निमंत्रित बीमारी है। अगर हम लकवा किसी तरह ठीक भी कर दें तो यह दूसरी बीमारी पैदा करेगा, यह तीसरी बीमारी पैदा करेगा, यह चौथी बीमारी पैदा करेगा। असल में जब तक यह बाजार जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाता है, तब तक उसकी बीमारियां पैदा होती चली जायेंगी। और बीमार होते ही यह पायेगा कि सारी स्थिति बदल गई। अब वह यह कहता है कि बैंकरप्ट होने के लिए जस्टीफाइड है। मैं क्या कर सकता हूं, लकवा लग गया है। अब यह कह सकता है किसी कर्जदार को, भाई कैसे चुका सकता हूं, देखिए यह मेरी हालत! सच तो यह है जब लेने वाला उसके सामने आयेगा तो खुद ही शर्म अनुभव करेगा कि उससे कैसे मांगे? उसकी पत्नी उसकी ज्यादा सेवा करेगी, बेटे ज्यादा पैर दबायेंगे मित्र देखने आने लगेंगे, उसकी खाट के पास लोग बैठेंगे।

असल में जब तक कोई बीमार न पड़े, हम कभी उसे प्रेम करते ही नहीं! तो जिसको भी प्रेम पाने की इच्छा हो, उसे बीमार बनना पड़ता है। स्त्रियां अक्सर बीमार पड़ी रहती हैं, उसका कुल कारण इतना है कि बीमारी उनके लिए प्रेम पाने का रास्ता है। वे जानती हैं कि पति को रोकने का और कोई उपाय नहीं है। पत्नी नहीं रोक पाती है, बीमारी रोक पाती है। एक दफे पता चल जाये और इसका ख्याल मन में बैठ जाये तो जब भी सहानुभूति चाहिए होगी, हम बीमार रहने लगेंगे। असल में बीमार के साथ सहानुभूति बताना खतरनाक है, बीमार का इलाज करना ठीक है। सहानुभूति बताना खतरनाक है, क्योंकि सहानुभूति से आप उसकी बीमारी में रस पैदा कर रहे हैं, जो कि खतरनाक सिद्ध होता है।

अब यह आदमी लकवा खाकर गिर पड़ा है, इसका कोई इलाज उसको ठीक नहीं कर सकता। वह दूसरी बीमारियां बदल लेगा, बस क्योंकि लकवा इसकी बीमारी नहीं है, लकवा इसका भाव है। पक्षाघात मानसिक है। इस सम्बन्ध में घटनायें हैं कि एक ऐसे लकवा वाले लोग के घर में आग लग गई। वे दो साल से लकवे में पड़े थे, उठ नहीं सकते थे। घर में आग लगी, सारे घर के लोग बाहर पहुंच गये, तब घर के लोगों को पता चला कि अरे उनका क्या होगा लेकिन देखा कि वह चले आ रहे हैं! वे भागे चले आ रहे हैं, जोकि उठ भी नहीं सकते थे! और जब घर के लोगों ने कहा कि आप तो चल रहे हैं! तो उस आदमी ने कहा, मैं चल कैसे सकता हूं, वह वापस गिर गया।

इसको ऐसा क्यों हुआ ; नहीं कि यह धोखा दे रहा है। यह धोखा नहीं दे रहा है। बीमारी माइंड ओरिएन्टेड है बॉडी-ओरिएन्टेड नहीं है। बस इतना ही फर्क है। इसलिए जब भी कोई चिकित्सक मरीज को कहता है कि तुम्हारी मानसिक बीमारी है, तो मरीज को अच्छा नहीं लगता, क्योंकि मानसिक बीमारी में ऐसा भाव लगता है कि तुम नाहक ही बीमारी दिखला रहे हो। यह बात गलत है। कोई आदमी नाहक बीमारी नहीं दिखला रहा है। बीमारी के कारण भी हैं। और बीमारी के मानसिक कारण उतने ही महत्वपूर्ण हैं, जितने महत्वपूर्ण शारीरिक कारण हैं, बल्कि शायद ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए किसी मरीज को भूलकर भी यह कहना कि तुम्हें मानसिक बीमारी है—तुम तो मेन्टली इल हो—चिकित्सक का दुर्व्यवहार है। इससे वह बीमार ठीक नहीं होता इससे सिर्फ चिकित्सक के खिलाफ होगा।

क्यों अब तक हम मानसिक बीमारी के सम्बन्ध में सद्भाव

पैदा नहीं कर पाये अगर मेरे पैर में चोट है तो सब सहानुभूति दिखायेंगे। लेकिन अगर मेरे मन में चोट है तो लोग कहते हैं कि यह तो मानसिक बीमारी है, जैसे कि मैंने कोई गलती की है। पैर में चोट होती, सहानुभूति भी मिलती, लेकिन मानसिक बीमारी की जैसे मेरी कोई भूल है! नहीं भूल नहीं है।

मानसिक बीमारी का अपना तल है। लेकिन चिकित्सक उसको स्वीकार नहीं करता है। नहीं करता है इसलिए कि उसके पास सिर्फ शारीरिक चिकित्सा का उपाय है और कोई कारण नहीं है। वह कहता है, यह बीमारी नहीं। असल में उसे कहना चाहिए कि मेरे हाथ के भीतर नहीं है। तुम और तरह का चिकित्सक खोजो या मुझे और तरह का चिकित्सक बनना पड़ेगा।

इस आदमी को भीतर से बाहर की तरफ आने वाला इलाज चाहिए। और हो सकता है, बहुत छोटी-सी बात इसकी जिन्दगी बदल दे।

ध्यान मेरे लिए भीतर से बाहर के तरफ आने वाली चिकित्सा है। बुद्ध से किसी ने जाकर कहा एक दिन—'आप कौन हैं—दार्शनिक हैं, विचारक हैं, संत हैं, योगी हैं, कौन हैं ;' बुद्ध ने कहा—मैं सिर्फ एक वैद्य हूँ। मैं एक चिकित्सक हूं—'जस्ट ए फिजीशियन' ! बुद्ध का उत्तर बहुत अद्भुत है। सिर्फ एक चिकित्सक—भीतर की बीमारियों के सम्बन्ध में कुछ मुझे पता है वह मैं तुमसे कहता हूं।

जिस दिन हमें यह ख्याल आ जाये कि भीतर की बीमारियों के सम्बन्ध में कुछ करना ही पड़ेगा, अन्यथा बाहर की बीमारी न तो हम मिटा सकते हैं पूरी तरह, न समाप्त कर सकते हैं। उसी दिन हम पायेंगे कि रिलिजन और साइंस करीब आने शुरू हो गए उसी दिन हम पायेंगे कि चिकित्सा और ध्यान

करीब आने शुरू हो गए। और मेरी अपनी समझ यह है कि इस सेतु को बनाने में चिकित्सा जितना बड़ा काम कर सकती है, उतना दूसरी कोई साइंस नहीं करेगी।

केमिस्ट्री को रिलिजन के पास आने की अभी कोई वजह नहीं है। इसी तरह फिजिक्स को, गणित को रिलिजन के पास आने की कोई वजह नहीं है। अभी गणित बिना धर्म के रह सकता है। मैं सोचता हूं सदा रह सकेगा, क्योंकि गणित कभी भी ऐसी स्थिति में पहुंचे जहां उसको धर्म की जरूरत पड़ जाये, ऐसा मुझे दिखायी नहीं पड़ता। या ऐसा कोई क्षण आ जाये जहां गणित को ऐसा लगे कि बिना धर्म के गणित विकसित नहीं होगा, ऐसा मैं कन्सीव नहीं कर पाता। कभी नहीं आयेगा वह दिन। गणित अपने खेल को जारी रख सकता है अन्त तक क्योंकि गणित एक खेल है। गणित जिन्दगी नहीं है।

लेकिन चिकित्सक खेल में नहीं है, जिन्दगी के साथ है। चिकित्सक ही शायद पहला ब्रिज बनेगा रिलिजन और साइंस के बीच। बन रहा है, विकसित समझदार मनुष्यों में बनना शुरू हो गया है। क्योंकि चिकित्सक को आदमी के साथ व्यवहार करना है। जैसे कि कार्ल गुस्ताफ जुंग ने मरने के पहले कहा कि मैं एक चिकित्सक की हैसियत से कह सकता हूं कि चालीस साल की उम्र के बाद जितने मरीज मेरे पास आये, बुनियादी रूप से उनकी बीमारी धर्म का अभाव था। बहुत तकनीकी बात है। अगर उनको किसी तरह का धर्म दिया जा सके तो स्वस्थ हो जायें। यह कुछ समझने जैसा है। जैसे ही व्यक्ति की जिन्दगी ढलनी शुरू होती है—पैंतीस साल तक उम्र चढ़ती है, उसके बाद उम्र ढलनी शुरू हो जाती है। तो हो सकता है पैंतीस साल तक ध्यान की कोई जरूरत मालूम न पड़े, क्योंकि आदमी बॉडी-ओरिएन्टेड है, अभी

चढ़ रहा है शरीर। अभी हो सकता है सब बीमारियां शरीर की हों। लेकिन पैंतीस साल के बाद बीमारियां नया रुख लेंगी क्योंकि अब जिन्दगी मौत की तरफ चलनी शुरू हो गयी। और जब जिन्दगी बढ़ती है तो बाहर की तरफ फैलती है और जब आदमी मरता है तो भीतर की तरफ सिकुड़ता है। बुढ़ापा भीतर की तरफ सिकुड़ जाता है।

सच तो यह है कि बूढ़े आदमियों की सारी बीमारियों में बहुत गहरे में मृत्यु होती है। आमतौर पर लोग कहते हैं कि फलां आदमी बीमारी के कारण मर गया। मैं मानता हूं, इससे ज्यादा उचित होगा कि फलां आदमी मरने के कारण बीमार हो गया। असल में मरने की सम्भावना हजार तरह की बीमारियों के लिए वल्नरेबिलिटी पैदा कर देती है। जैसा मुझे लगता है कि मैं मर जाऊंगा, मेरे सब द्वार खुल जाते हैं बीमारियों के लिए मैं उसको पकड़ लेता हूं। अगर एक आदमी को पक्का हो जाये कि वह कल मर जायेगा। तो बिल्कुल स्वस्थ आदमी बीमार पड़ जायेगा। सब तरह ठीक था, सब तरह की रिपोर्ट ठीक थी। एक्स-रे ठीक था, उसका ब्लड-प्रेशर ठीक था, उसकी हृदय-गति ठीक थी। स्टेथस्कोप सब ठीक कहता था। लेकिन इसे पक्का बता दिया जाये कि वह चौबीस घंटे बाद मर जायेगा। आप अचानक पायेंगे कि उसने हजारों बीमारियां पकड़नी शुरू कर दी। चौबीस घंटे में इतनी बीमारियां पकड़ लेगा, जितनी कि चौबीस जिन्दगी में पकड़ना मुश्किल था। क्या हो गया इस आदमी को ?

वह ओपन हो गया बीमारी के लिए, अब उसने रेजिस्टेंस छोड़ दिया। जब मरना ही है तो उसके भीतर जो चेतना की दीवार, वह जो चेतना की परिधि थी बीमारी के प्रति, उससे लौट गया, अब वह मरने के लिए राजी हो गया, तो बीमारी

आनी शुरू हो गयी। इसलिए रिटायर्ड आदमी जल्दी मर जाता है और रिटायर्ड आदमी को रिटायर्ड होने के पहले ठीक से समझ लेना चाहिए। पांच-छः साल उम्र का फर्क पड़ता है। जो आदमी सत्तर साल में मरता है, वह पैंसठ में मरेगा। जो अस्सी में मरता हो, वह पिचहत्तर में मर जायेगा। और बाकी वक्त रिटायरमेंट के जो दस-पन्द्रह वर्ष गुजारेगा, वह मरने की तैयारी है। वह और कोई काम नहीं करेगा; क्यों-कि जैसे ही एक दफा उसे पता चलेगा कि वह जिन्दगी के लिए बेकार हो गया है—अब उसका कोई काम न रहा। सड़क पर कोई नमस्कार नहीं करता, क्योंकि जब तक वह सेक्रेटेरि-यट में था, बात और थी। अब कोई नमस्कार नहीं करता, कोई देखता नहीं, क्योंकि अब नमस्कार भी लोग दूसरों को करेंगे। सब चीज की इकॉनामी है। सेक्रेटेरियट में दूसरे लोग पहुंच गये हैं, इनको नमस्कार करें, कि अब अगर आपको भी नमस्कार बजाते रहें, तो मुश्किल हो जायेगी। लोग आपको भूल जायेंगे। अब उस आदमी को अचानक लगता है कि वह बेकार हो गया, यूजलेस हो गया किसी को उसकी कोई जरू-रत नहीं। घर में बच्चे अपनी पत्नियों के साथ चित्र देखने जाने लगेंगे। पहले जिनके लिए वह काम का था, अब उनके लिए वह बेकाम हो गया। अचानक वल्नरेबिलिटी पैदा हो गयी, अब मौत के लिए चारों तरफ से खुल गया।

मनुष्य की चेतना भीतर से कब स्वस्थ होती है? एक, उसे भीतर को चेतना का अहसास शुरू हो जाये, भीतर की चेतना की फीलिंग्स शुरू हो जायें। हमें आमतौर से भीतर की कोई फीलिंग नहीं होती, हमारी सब फीलिंग्स शरीर की होती हैं—हाथ की होती है, पैर की होती है, सिर की होती है, हृदय की होती है। उसके लिए होती हैं, जो नहीं हैं। हमारा

सारा बोध, हमारी सारी अवेयरनेस घर की होती है; घर में रहने वाले मालिक की नहीं होती। यह बड़ी खतरनाक स्थिति है, क्योंकि कल अगर मकान गिरने लगेगा, तो मैं समझूंगा कि मैं गिर रहा हूं, यही मेरी बीमारी बनेगी। नहीं, अगर मैं यह भी मान लूं कि मैं मकान से अलग हूं। मकान के भीतर हूं, मकान गिर जायेगा, फिर भी मैं हो सकता हूं तो बहुत फर्क पड़ेगा—बहुत बुनियादी फर्क पड़ जायेगा। तब मृत्यु का भय क्षीण हो जायेगा।

ध्यान के अतिरिक्त मृत्यु का भय कभी भी नहीं घटता। तो ध्यान का पहला अर्थ है—अवेयरनेस ऑफ वन सेल्फ। हम जब भी होश में होते हैं, तो हमारा होश जो है वह अवे-यरनेस अबाउट है, किसी चीज के बाबत है सदा। वह अभी अपने बाबत नहीं है। इसीलिए तो हम अकेले बैठे तो हमें नींद आनी शुरू हो जाती हैं, क्योंकि वहां क्या करें? अखबार पढ़ें, रेडियो खोलें, तो जरा जागने सा मालूम पड़ता है। अगर एक आदमी को हम बिल्कुल अकेले में छोड़ दें। अंधेरा कर दें कमरे में। अंधेरे में इसलिए नींद आ जाती है, क्योंकि आपको चीजें कोई दिखायी नहीं पड़तीं तो कॉन्शसनेस की कोई जरू-रत नहीं रह जाती। कुछ चीज दिखायी नहीं पड़ती, तब क्या करें सिवाय सोने के? कोई उपाय नहीं मालूम पड़ता। अकेले पड़ जायें, अंधेरा हो, कोई बात करने को न हो, कुछ सोचने को न हो, तो बस आप आ गये नींद में। और कोई उपाय नहीं है।

ध्यान रहे, नींद और ध्यान एक अर्थ में समान है, एक अर्थ में भिन्न हैं। नींद का मतलब है: आप अकेले हैं; लेकिन सो गये हैं। ध्यान का मतलब है आप अकेले हैं; लेकिन जागे हैं। इतना ही फर्क है अगर आप अपने अकेलेलन में भी अपने भीतर

जाग सकते हैं अपने प्रति ।

एक आदमी बुद्ध के सामने बैठा है एक दिन और अपने पैर का अंगूठा हिला रहा है। बुद्ध ने कहा कि अंगूठा क्यों हिला रहे हो ? उस आदमी ने कहा, छोड़िये ऐसे ही हिलाता था, मुझे कुछ पता न था। बुद्ध ने कहा तुम्हारा अंगूठा हिले और तुम्हें पता न हो ! अंगूठा किसका है यह ? तुम्हारा है यह ? उसने कहा कि मेरा है यह, लेकिन आप भी कहां की बातें करते हैं ! आप जो बात करते थे, वह जारी रखिये। बुद्ध ने कहा, वह मैं नहीं कहूंगा अब, क्योंकि जिस आदमी से मैं बात कर रहा हूं, वह बेहोश है। तो अपने अंगूठे के हिलाने का आगे से होश रखो।

अवेयरनेस इज ऑलवेज डबल एरोड। अगर हम उसका प्रयोग करें तो उसका एक तीर तो बाहर की तरफ रह जायेगा और दूसरा तीर भीतर की तरफ हो जायेगा। तो ध्यान का पहला अर्थ है कि हम अपने शरीर और स्वयं के प्रति जागना शुरू करें। यह जागरण अगर बढ़ सके तो आपका मृत्यु भय क्षीण हो जायेगा।

और जो चिकित्सा-शास्त्र मनुष्य को मृत्यु के भय से मुक्त नहीं कर सकता है, वह चिकित्सा-शास्त्र मनुष्य नाम की बीमारी को कभी भी स्वस्थ नहीं कर सकता। तो चिकित्सा-शास्त्र कोशिश करता है, उम्र लम्बी करके। उम्र लम्बी करने से सिर्फ मृत्यु की प्रतीक्षा लम्बी होती है, और कोई फर्क नहीं पड़ता। और लम्बी प्रतीक्षा से छोटी प्रतीक्षा अच्छी है। उम्र लम्बी करने से सिर्फ मौत और भी दुखदायी होती चली जाती है।

क्या आपको अन्दाज है कि जिन मुल्कों में चिकित्सा-शास्त्र ने लोगों की उम्र ज्यादा बढ़ा दी, वहां एक नया आन्दोलन

चल रहा है। वह आन्दोलन यह है कि बूढ़े कह रहे हैं कि हमें मरने का अधिकार होना चाहिए कॉन्स्टिट्यूशन में क्योंकि आप हमको लटकाए चले जा रहे हैं। हमको जिन्दा रहना बहुत कठिन हो गया है। आप तो लटका सकते हैं। एक आदमी को ऑक्सीजन का सिलेन्डर रखकर और न मालूम कितनी देर तक लटका सकते हैं। उसको जिन्दा रख सकते हैं, लेकिन उसकी जिन्दगी मरने से बदतर हो जायेगी। आज न मालूम कितने लोग यूरोप, अमरीका के अस्पतालों में उल्टे-सीधे शीर्षासन की हालत में हैं ! ऑक्सीजन के सिलेन्डरों से बंधे हुए पड़े हैं ! उनको मरने का हक नहीं है ! वे मरने के हक की मांगें कर रहे हैं। मैं जानता हूं कि इस सदी के पूरे होते-होते दुनिया के सभी सुशिक्षित राष्ट्रों के कॉन्स्टिटयूशन में जन्म-सिद्धि अधिकारों में मरने का अधिकार जुड़ जायेगा। क्योंकि चिकित्सा को यह हक नहीं हो सकता कि वह किसी आदमी को उसकी इच्छा के खिलाफ जिन्दा रखे। अब तक तो हक यह नहीं था कि उसकी इच्छा के खिलाफ मारें, लेकिन अभी तक जिन्दा रखने का उपाय नहीं था। अब है।

आदमी की उम्र बढ़ाने से मृत्यु का भय कम नहीं होगा। आदमी को स्वस्थ कर देने से आदमी ज्यादा सुखी हो जायेगा, लेकिन ज्यादा अभय नहीं होगा। अभय, फियरलेसनेस तो सिर्फ एक ही स्थिति में आती है कि मुझे भीतर पता चले कि कुछ है, जो मरता ही नहीं। उसके बिना कभी नहीं होता। तो ध्यान उस अमरत्व का बोध है। वह जो मेरे भीतर है, वह कभी नहीं मरता। और वह जो मेरे बाहर है, वह मरता ही है। इसलिए जो बाहर है, उसकी चिकित्सा करो कि वह जितने दिन जिये, सुख से जिये। और वह जो भीतर है, उसका स्मरण करो कि मृत्यु भी द्वार पर खड़ी हो जाये तो भय न

सताये। यह आन्तरिक बोध ही अभय है।

भीतर ध्यान, बाहर चिकित्सा। तो चिकित्सा-शास्त्र को परिपूर्ण शास्त्र बना सकते हैं। मेडिसिन और मेडिटेशन को मैं एक ही शास्त्र के दो छोर मानता हूं, जिनके बीच की अभी कड़ियां नहीं जुड़ पाईं। लेकिन धीरे-धीरे करीब आ रही हैं। आज तो अमेरिका के सभी चिकित्सा अस्पतालों में एक हिप्नोटिस्ट का होना जरूरी हो गया है। लेकिन हिप्नोटिज्म मेडिटेशन नहीं है। पर यह अच्छा कदम है। इस बात की स्वीकृति है कि आदमी की चेतना के साथ भी कुछ करने की जरूरत है। सिर्फ शरीर के साथ करना पर्याप्त नहीं है। अगर हिप्नोटिस्ट आयेगा तो मैं मानता हूं कल अस्पताल में मन्दिर भी आयेगा। वह पीछे आयेगा, थोड़ा वक्त लगेगा। हिप्नोटिस्ट के बाद एक डिपार्टमेंट योगी का भी हर अस्पताल में आ ही जायेगा। आ ही जाना चाहिए। तब हम पूरे व्यक्ति को ट्रीट कर पायेंगे। शरीर की चिकित्सक फिक्र कर ले। चित्त की साइकोलॉजिस्ट फिक्र कर ले। उसकी आत्मा की फिक्र योग कर ले। जिस दिन अस्पताल इस तरह पूरे मनुष्य के व्यक्तित्व को—एज ए होल, एज ए टोटेलिटी, स्वीकार करके चिकित्सा करेगा, मैं मानता हूं कि मनुष्य के जीवन में बड़े मंगल का क्षण होगा। ऐसा मंगल का क्षण करीब आए, इस दिशा में सोचने की प्रार्थना करता हूं।

●

अहमदाबाद, ३१ अगस्त, १९७०

२. ध्यान : एक वैज्ञानिक दृष्टि

मेरे प्रिय आत्मन्

सुना है मैंने कि कोई नाव उलट गई थी। एक व्यक्ति उस नाव में बच गया और एक निर्जन द्वीप पर जा लगा। दिन, दो दिन, चार दिन, सप्ताह, दो सप्ताह उसने प्रतीक्षा की कि जिस बड़ी दुनिया का वह निवासी था वहां से कोई उसे बचाने आ जाये। फिर महीने भी बीत गये और वर्ष भी बीतने लगा! फिर किसी को आते न देखकर वह धीरे-धीरे प्रतीक्षा करना भूल गया।

पांच वर्षों के बाद कोई जहाज वहां से गुजरा। उस एकांत निर्जन द्वीप पर उस आदमी को निकालने के लिए जहाज ने लोगों को उतारा और जब उन आदमियों ने उस खो गये आदमी को चलने को कहा तो वह विचार में पड़ गया। उन लोगों ने कहा कि आप विचार कर रहे हैं! चलना है या नहीं? तो उस आदमी ने कहा, अगर तुम्हारे साथ कुछ अखबार हों, जो तुम्हारी दुनिया की खबर लाए हों, तो मैं पिछले दिनों के कुछ अखबार देख लेना चाहता हूं। अखबार देखकर उसने कहा, तुम अपनी दुनिया सम्हालो और अखबार भी। मैं जाने से इन्कार करता हूं।

बहुत हैरान हुए वे लोग। उनकी हैरानी स्वाभाविक थी। पर वह आदमी कहने लगा, इन पांच वर्षों में मैंने जिस शान्ति, जिस मौन और जिस आनन्द को अनुभव किया, वह मैंने पूरे

जीवन के पचास वर्षों में भी, तुम्हारी उस बड़ी दुनिया में कभी अनुभव नहीं किया था। और सौभाग्य और परमात्मा की अनुकम्पा कि उस दिन तूफान में नाव उलट गई और मैं इस द्वीप पर आ लगा। यदि मैं इस द्वीप पर न लगा होता, तो शायद मुझे पता भी न चलता कि मैं किस बड़े पागलखाने में पचास वर्षों से जी रहा हूं।

हम उस बड़े पागलखाने के हिस्से हैं। उसमें ही पैदा होते हैं, उसमें ही खड़े होते हैं, उसमें ही जीते हैं और इसलिए कभी पता भी नहीं चल पाता कि जीवन में भी पाने योग्य है, वह सभी हमारे हाथ से चूक गया। और जिसे हम सुख कहते हैं और जिसे हम शान्ति कहते हैं, उसका न तो सुख से कोई सम्बन्ध है और न शान्ति से कोई सम्बन्ध है। और जिसे हम जीवन कहते हैं शायद वह मौत से किसी भी हालत में बेहतर नहीं है। लेकिन परिचय कठिन है। चारों ओर एक शोरगुल की दुनिया है, चारों ओर शब्दों का, शोरगुल का उपद्रवग्रस्त वातावरण है। उस सारे वातावरण में हम वे रास्ते ही भूल जाते हैं, जो भीतर मौन और शान्ति में ले जा सकते हैं। इस देश में और इस देश के बाहर भी कुछ लोगों ने अपने भीतर भी एकांत द्वीप की खोज कर ली है।

न तो यह सम्भव है कि सभी की नावें डूब जायें, न यह सम्भव है कि इतने तूफान उठें, और न ही सम्भव है कि इतने निर्जन द्वीप मिल जायें, जहां सारे लोग शान्ति और मौन को अनुभव कर सकें। लेकिन फिर भी यह सम्भव है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर उस निर्जन द्वीप को खोज ले।

ध्यान अपने ही भीतर उस निर्जन द्वीप की खोज का मार्ग है।

यह भी समझ लेने जैसा है।

दुनिया में सारे धर्मों में विवाद हैं। सिर्फ एक बात के सम्बन्ध में विवाद नहीं है। और वह बात ध्यान है। मुसलमान कुछ और सोचते, हिन्दू कुछ और, ईसाई कुछ और, पारसी कुछ और, बौद्ध कुछ और। उन सबके सिद्धान्त बहुत भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन एक बात के सम्बन्ध में इस पृथ्वी पर कोई भेद नहीं है। और वह यह कि जीवन के आनन्द का मार्ग ध्यान से होकर जाता है। और परमात्मा तक अगर कोई भी कभी पहुंचा है तो ध्यान की सीढ़ी के अतिरिक्त और कोई सीढ़ी से नहीं। चाहे जीसस, चाहे बुद्ध, और चाहे मुहम्मद, और चाहे महावीर—कोई भी जिसने जीवन की परम धन्यता को अनुभव किया है, उसने अपने ही भीतर गहरे डूबकर उस निर्जन द्वीप की खोज कर ली है।

इस ध्यान के विज्ञान के सम्बन्ध में दो-तीन बातें आपसे कहना चाहूंगा। पहली बात तो यह कि साधारणतः जब हम बोलते हैं, तभी हमें पता चलता है कि हमारे भीतर कौन-से विचार चलते हैं। ध्यान का विज्ञान इस स्थिति को—जब हम बोलते हैं तभी हमें पता चलता है कि हमारे भीतर क्या था—अत्यन्त ऊपरी अवस्था मानता है। अगर एक आदमी न बोले तो हम पहचान भी न पायेंगे कि वह कौन है, क्या है। सुकरात ने किसी से मिलते वक्त कहा था कि तुम बोलो कुछ, तो मैं पहचान लूं कि तुम कौन हो। तुम न बोलो कुछ, तो पहचान मुश्किल है। इसलिए तो हम जानवरों को अलग-अलग नहीं पहचान पाते, क्योंकि वे बोलते नहीं हैं। और मौन में सारी शक्लें एक जैसी हो जाती हैं। शब्द हमारे बाहर प्रगट होता है, तभी हमें पता चल जाता है कि हमारे भीतर क्या था।

ध्यान का विज्ञान कहता है कि यह अवस्था सबसे ऊपरी अवस्था है चित्त की। यह ऊपर की पर्त है। हम नहीं बोले

होते हैं, तब भी उसके पहले भीतर विचार चलता है, अन्यथा हम बोलेंगे कैसे। अगर मैं कहता हूं, 'ओम्', तो इसके पहले कि मैंने कहा, उसके पहले मेरे भी ओठों के पार और मेरे हृदय के किसी कोने में 'ओम्' का निर्माण हो जाता है।

ध्यान कहता है, वह दूसरी पर्त है व्यक्तित्व के गहराई की साधारणतः आदमी ऊपर की पर्त पर ही जीता है। उसे दूसरी पर्त का भी पता नहीं होता। उसके बोलने की दुनिया के नीचे भी एक सोचने का जगत् है, उसका भी उसे कुछ पता नहीं होता। काश ! अगर हमें हमारे सोचने के जगत् का पता चल जाये तो हम बहुत हैरान हो जायें। जितना हम सोचते हैं, उसका थोड़ा-सा हिस्सा वाणी में प्रकट होता है। ठीक ऐसे ही जैसे एक बर्फ के टुकड़े को हम पानी में डाल दें तो एक हिस्सा ऊपर हो जायेगा और नौ हिस्सा नीचे डूब जायेगा। हमारा भी नौ हिस्सा जीवन, विचार का, नीचे डूबा रहता है। एक हिस्सा ऊपर दिखाई पड़ता है। इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि आप क्रोध कर चुकते हैं, तब आप कहते हैं कि यह कैसे सम्भव हुआ ! एक आदमी हत्या कर देता है, फिर पश्चात्ताप करता है। कहता है कि मैंने कैसे हत्या की ! वह कहता है, इनस्पाइट ऑफ मी, मेरे बावजूद भी यह हो गया ! मैंने तो कभी ऐसा करना ही नहीं चाहा था। उसे पता नहीं कि हत्या आकस्मिक नहीं है। वह पहले भीतर निर्मित होती है। लेकिन वह तल गहरा है और उस तल से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है।

ध्यान कहता है पहले तल का नाम बैखरी है। दूसरे तल का नाम मध्यमा है। और उसके नीचे भी एक तल है जिसे ध्यान का विज्ञान पश्यन्ति कहता है। इसके पहले कि भीतर ओठों के पार हृदय के कोने में शब्द निर्मित हों उससे भी

पहले शब्द का निर्माण होता है। लेकिन उस तीसरे तल का तो हमें साधारणतः कोई पता नहीं होता। उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं होता। दूसरे तक हम कभी-कभी झांक पाते हैं, तीसरे तक हम कभी नहीं झांक पाते।

ध्यान का विज्ञान कहता है कि पहला तल बोलने का है—दूसरा तल सोचने का है—तीसरा तल दर्शन का है। पश्यन्ति का अर्थ है–देखना। जहां शब्द देखे जाते हैं। मुहम्मद कहते हैं कि मैंने कुरान देखी, सुनी नहीं। वेद के ऋषि कहते हैं कि हमने ज्ञान देखा, सुना नहीं। मूसा कहते हैं कि मेरे सामने 'टेन कमांडमेंट्स' प्रगट हुए, दिखाई पड़े, मैंने सुने नहीं यह तीसरे तल की बात है, जहां विचार दिखाई पड़ते हैं, सुनाई नहीं।

तीसरा तल भी ध्यान के हिसाब से मन का आखिरी तल नहीं। चौथा एक तल है, जिसे ध्यान का विज्ञान परा कहता है। वहां विचार दिखाई भी नहीं पड़ते, सुनाई भी नहीं पड़ते और जब कोई व्यक्ति देखने और सुनने से नीचे उतर जाता है, तब उस चौथे तल का पता चलता है। और उस चौथे तल के पार जो जगत् है, वह ध्यान का जगत् है। चार हमारी पर्तें हैं, इन चारों दीवारों के भीतर हमारी आत्मा है। हम बाहर की पर्तों के भी, दीवार के बाहर ही जीते हैं। पूरे जीवन शब्दों की पर्त के साथ जीते हैं। और स्मरण नहीं आता कि खजाने बाहर नहीं हैं—बाहर सिर्फ रास्तों की धूल है।

आनन्द बाहर नहीं है। बाहर आनन्द की धुन भी सुनाई पड़ जाये तो बहुत है। जीवन का सब कुछ भीतर है—भीतर, गहरे अंधेरे में दबा हुआ। ध्यान वहां तक पहुंचने का मार्ग है। पृथ्वी पर बहुत से रास्तों से उस पांचवीं स्थिति में पहुंचने की कोशिश की जाती रही है। और जो व्यक्ति इन चार स्थितियों

को पार करके पांचवीं गहराई में नहीं डूब पाता, उस व्यक्ति को जीवन तो मिला, लेकिन जीवन को जानने की उसने कोई कोशिश नहीं की। उस व्यक्ति को खजाने तो मिले, लेकिन खजानों से वह अपरिचित ही रहा और रास्तों पर भीख मांगने में समय बिताया। उस व्यक्ति के पास वीणा तो थी जिससे संगीत पैदा हो सकता था, लेकिन उसने उसे कभी छुआ नहीं। उसकी उंगलियों का कभी कोई स्पर्श उसकी वीणा तक नहीं पहुंचा। हम जिसे सुख कहते हैं, धर्म उसे सुख नहीं कहता है। वह सुख है भी नहीं। हम भी भली-भांति जानते हैं कि हमारा सुख करीब-करीब ऐसा है।

मुझे एक छोटी-सी कहानी याद आती है। एक आदमी अपने मित्रों के पास बैठा है—बहुत बेचैन, बहुत परेशान। और ऐसा मालूम पड़ता है कि वह भीतर कोई बहुत कष्ट, बहुत पीड़ा को दबाया हुआ है। अंतत—एक मित्र उससे पूछता है, इतने परेशान हैं! बात क्या है? सिर में दर्द है? पेट में दर्द है? उस आदमी ने कहा, नहीं, न सिर में दर्द है, न पेट में दर्द है। मेरे जूते बहुत काट रहे हैं। बहुत तंग हैं जूते। उस मित्र ने कहा कि जूतों को निकाल दें। और अगर इतने तंग जूते हैं कि परेशान कर रहे हैं, तो थोड़े ढीले जूते खरीद लें। उस आदमी ने कहा, नहीं, यह न हो सकेगा। मैं वैसे ही बहुत मुसीबत में हूं। पत्नी मेरी बीमार है और मैं जिस व्यक्ति को न चाहता था, लड़की ने उससे शादी कर ली है। लड़का शराबी है, जुआरी है। और मेरी हालत दिवाले के करीब है। मैं वैसे ही बहुत दुख में हूं।

उन मित्रों ने कहा, आप पागल हैं। वैसे ही बहुत दुख में हैं तो जूते को तो बदल ही लें। उस आदमी ने कहा, इस जूते के साथ ही मेरा एक मात्र सुख रह गया है। तब तो वे बहुत

चकित हुए। उन्होंने कहा, यह सुख किस प्रकार है! उस आदमी ने कहा, मैं मुसीबतों में हूं। दिन भर यह जूता मुझे काटता है और शाम को जब मैं इस जूते को उतारता हूं तो मुझे बड़ी राहत मिलती है। एक ही सुख मेरे पास बचा है। शाम जब इस जूते को घर जाकर उतारता हूं तो बड़ी रिलीफ, बड़ी राहत मिलती है। बस, एक ही सुख मेरे पास है। और तो दुख ही दुख हैं। इस जूते को मैं नहीं बदल सकता हूं। जिसे हम सुख कहते हैं, वह तंग जूते से ज्यादा सुख नहीं है। रिलीफ, से ज्यादा सुख नहीं है। जिसे हम सुख कहते हैं, वह थोड़ी देर के लिए किसी तनाव से मुक्ति है। नकारात्मक है, निगेटिव है।

एक आदमी थोड़ी देर के लिए शराब पी लेता है और सोचता है कि सुख में है। एक आदमी थोड़ी देर के लिए सेक्स में उतर जाता है और सोचता है कि सुख में है। एक आदमी थोड़ी देर के लिए संगीत सुन लेता है और सोचता है कि सुख में है। एक आदमी बैठकर गपशप कर लेता है, हंसी-मजाक कर लेता है, हंस लेता है और सोचता है कि सुख में है। ये सारे सुख तंग जूते को सांझ उतारने से भिन्न नहीं हैं। इनका सुख से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। सुख एक पॉजिटिव, एक विधायक स्थिति है, नकारात्मक नहीं। सुख छींक जैसा नहीं है कि आपको छींक आ जाती है और पीछे एक राहत मिलती है, क्योंकि छींक परेशान कर रही थी। सुख एक नकारात्मक चीज नहीं है, लेकिन एक बोझ मन से उतर जाता है और पीछे अच्छा लगता है।

सुख एक विधायक अनुभव है। लेकिल बिना ध्यान के वैसा विधायक सुख किसी को अनुभव नहीं होता। और जैसे-जैसे आदमी शिक्षित और सभ्य हुआ है, वैसे-वैसे ध्यान से दूर हुआ

है। सारी सभ्यता, सारी शिक्षा आदमी को दूसरों से कैसे सम्बन्धित हो, यह तो सिखा देती है, लेकिन अपने से कैसे सम्बन्धित हो यह नहीं सिखाती। समाज को कोई जरूरत भी नहीं है कि आप अपने से सम्बन्धित हों। समाज चाहता है कि आप दूसरों से सम्बन्धित हों ठीक से, कुशलता से, तो बात पूरी हो जाती है। आप कुशलता से काम करें, बात पूरी हो जाती है।

समाज आपको एक फंक्शन, उपादेय प्रक्रिया से ज्यादा नहीं मानता। अच्छे दुकानदार हों, अच्छे नौकर हों, अच्छे पति हों, अच्छी मां हों, अच्छी पत्नी हों, बात समाप्त हो गई। आप से समाज को कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए समाज की सारी शिक्षा उपयोगिता की है, यूटिलिटी की है। समाज सारी शिक्षा ऐसी देता है, जिससे कुछ पैदा हो। आनन्द से कुछ भी पैदा होता नहीं दिखाई पड़ता। आनन्द कोई कमोडिटी, उपयोगी वस्तु नहीं है, जो बाजार में बिक सके। आनन्द कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे रुपये में भंजाया जा सके। आनन्द कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे बैंक बैलेन्स के रूप में जमा किया जा सके। आनन्द कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसका कोई भी मुल्य हो, जिसकी समाज में कोई भी कीमत हो सके। इसलिए समाज को आनन्द से कोई प्रयोजन नहीं है। और कठिनाई यही है कि आनन्द भर एक ऐसी चीज है, जो व्यक्ति के लिए मूल्यवान है, बाकी कुछ भी मूल्यवान नहीं है। जैसे-जैसे आदमी सभ्य होता जाता है, वैसे-वैसे यूटिलिटेरियन, उपयोगितावादी होता जाता है। वह कहता है कि सब चीज की उपयोगिता होनी चाहिए।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान से क्या मिलेगा? शायद वे सोचते होंगे कि रुपये मिलें, मकान मिले, कोई पद

मिले। ध्यान से न पद मिलेगा, न रुपये मिलेंगे, न मकान मिलेगा। ध्यान की कोई उपयोगिता नहीं है। लेकिन जो आदमी सिर्फ उपयोगी चीजों की तलाश में घूम रहा है, वह आदमी सिर्फ मौत की तलाश में घूम रहा है। जीवन की भी कोई उपयोगिता नहीं है।

जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है, वह परपजलेस, प्रयोजन मुक्त है। जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है, उसकी बाजार में कोई कीमत नहीं है। प्रेम की कोई कीमत है बाजार में? कोई कीमत नहीं है। आनन्द की कोई कीमत है? कोई कीमत नहीं है। प्रार्थना की कोई कीमत है? कोई कीमत नहीं है। ध्यान की, परमात्मा की इनकी कोई भी कीमत नहीं है। लेकिन जिस जिन्दगी में कोई अनुपयोगी नॉन-यूटिलिटेरियन मार्ग नहीं होता, उस जिन्दगी में सितारों की चमक भी खो जाती है। उस जिन्दगी में फूलों की सुगन्ध भी खो जाती है। उस जिन्दगी में पक्षियों के गीत भी खो जाते हैं। उस जिन्दगी में नदियों की दौड़ती हुई गति भी खो जाती है। उस जिन्दगी में कुछ नहीं बचता, सिर्फ बाजार बचता है। उस जिन्दगी में काम के सिवाय कुछ भी नहीं बचता। उस जिन्दगी में तनाव और परेशानी और चिन्ताओं के सिवाय कुछ भी नहीं बचता।

जिन्दगी चिन्ताओं का एक जोड़ नहीं है। लेकिन हमारी जिन्दगी चिन्ताओं का एक जोड़ है। ध्यान हमारी जिन्दगी में उस डायमेन्शन, उस आयाम की खोज है, जहां हम बिना प्रयोजन के सिर्फ होने मात्र में, जस्ट-बीइंग में आनन्दित होते हैं। और जब भी हमारे जीवन में कहीं से भी सुख की कोई किरण उतरती है तो वे, वे ही क्षण होते हैं जब हम खाली, बिना काम के समुद्र के तट पर या किसी पर्वत की ओट में या आकाश में तारों के नीचे या सुबह उगते सूरज के साथ, आकाश में

उड़ते हुए पक्षियों के पीछे या खिले हुए फूलों के पास, कभी जब हम बिना काम, बिल्कुल बेकाम, बिल्कुल व्यर्थ, बाजार में जिसकी कोई कीमत न होगी—ऐसे किसी क्षण में होते हैं, तभी हमारे जीवन में सुख की थोड़ी-सी ध्वनि उतरती है। लेकिन यह आकस्मिक एक्सिडेंटल होती है।

ध्यान व्यवस्थित रूप से इस किरण की खोज है। कभी होती है यह ट्यूनिंग, सम-स्वरता विश्व के और हमारे बीच संगीत का स्वर बंध जाता है कभी, ठीक वैसे ही जैसे कभी कोई बच्चा सितार को छेड़ दे और कोई रोग पैदा हो जाये आकस्मिक। ध्यान व्यवस्थित रूप से जीवन में इस द्वार को बड़ा करने का नाम है, जहां से आनन्द की किरण उतरनी शुरू होती हैं, जहां से हम पदार्थ से छूटते हैं और परमात्मा से जुड़ते हैं।

मेरे देखे ध्यान से ज्यादा बिना कीमत की कोई भी चीज नहीं है। और ध्यान से ज्यादा बहुमूल्य भी कोई चीज नहीं है। और आश्चर्य की बात यह है कि यह जो ध्यान, प्रार्थना या हम कोई और नाम दें—यह इतनी कठिन नहीं है, जितनी लोग सोचते हैं। कठिनाई अपरिचय की है। कठिनाई न जानने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जैसे हमारे घर के किनारे पर ही कोई फूल खिला हो और हमने खिड़की न खोली हो। जैसे बाहर सूरज खड़ा हो और द्वार बन्द हों। जैसे खजाना सामने पड़ा हो और हम आंख बन्द किये बैठे हों—ऐसी कठिनाई है। अपने ही हाथ से अपरिचय के कारण कुछ हम खोये हुए बैठे हैं। जो हमें किसी भी क्षण हो सकता है। ध्यान प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता है। क्षमता ही नहीं प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार भी है। परमात्मा जिस दिन व्यक्ति को पैदा करता है, ध्यान के साथ ही पैदा करता है।

बच्चों में बूढ़ों से ज्यादा ध्यान होता है। इसलिए बच्चों की जिन्दगी में बूढ़ों से ज्यादा आनन्द की पुलक होती है, इसलिए बच्चों की आंखों में कुछ अलौकिक झलक होती है। बच्चे बोलते भी हैं तो जैसे मौन भीतर से बोलता है। बूढ़े बोलते भी हैं तो मौन से बचने के लिए।

जब दो आदमी पास बैठते हैं तो जल्दी से बात शुरू कर देते हैं, ताकि कहीं मौन न घेर ले, कहीं चुप्पी बीच में न आ जाये अन्यथा कठिनाई होगी। फिर उस मौन को तोड़ना कठिन पड़ेगा। अगर पति पत्नी से थोड़ी देर न बोले तो खतरा है। पति न बोले तो खतरा है। मौन थोड़ी देर आ जाये तो डर है, क्योंकि बीच में फिर मौन को तोड़ना बहुत मुश्किल हो जायेगा। फिर उसे पिघलाना मुश्किल होगा। इसलिए हम उसे आने ही नहीं देते। हम बोल-बोलकर मौन से बचते रहते हैं। बच्चे अगर बोलते हैं तो उनसे मौन बोलता है। बूढ़े अगर बोलते हैं तो सिर्फ मौन से एक एस्केप, एक पलायन होता है। लेकिन हम बच्चों को जल्दी बूढ़े बनाने की कोशिश में लग जाते हैं। जब तक वे बच्चे रहते हैं, तब तक भरोसे के योग्य नहीं रहते। जब तक वे बच्चे रहते हैं, तब तक हमारी काम की दुनिया के हिस्से नहीं रहते। हम शीघ्र ही जो हमें परमात्मा से मिला है, उसे तोड़ने-मोड़ने और अपने रास्तों पर लगाने में तत्पर हो जाते हैं। इसके पहले कि बच्चा जान पाये कि क्या उसके पास था, हम उसे करीब-करीब उससे अपरिचित कर देते हैं। और उससे परिचित कर देते हैं, जिससे वह जिन्दगी भर परिचित रहेगा। और वह अपनी निजी सम्पदा से अपरिचित रह जायेगा।

ध्यान हमारा स्वभाव है। उसे हम जन्म के साथ लेकर पैदा होते हैं। और इसलिए बाद में ध्यान से परिचित होना

कठिन नहीं है। ध्यान कुछ है, जो हमारा है, जिसे हम केवल भूल गये हैं। जिसे विस्मरण किया है, उसे हम पुनः याद कर सकते हैं। पुनर्स्मरण से ज्यादा नहीं है ध्यान—एक रिमेम्बरिंग। कुछ था हमारे पास जिसे हम भूल गये हैं, उसे हम पुनः याद कर सकते हैं। इसलिए कठिन नहीं है ध्यान। और प्रत्येक व्यक्ति ध्यान में प्रविष्ट हो सकता है।

ध्यान-मंदिर से एक ऐसे स्थान का प्रयोजन, है जहां किसी भी धर्म का, किसी भी मार्ग का और किसी भी तरह से सोचने वाला व्यक्ति वैज्ञानिक रूप से, साइंटिफिक विधि से ध्यान से परिचित हो सके और ध्यान में प्रवेश कर सके। इतना ही नहीं वरन् वहां वह ध्यान के मार्ग पर जो बाधायें हैं उनसे वैज्ञानिक ढंग से परिचित हो सके। और ध्यान रहे मैं जोर देकर कह रहा हूं—'वैज्ञानिक ढंग से'। क्योंकि मंदिरों की कोई कमी नहीं है, मस्जिदों की कोई कमी नहीं है; गुरुद्वारे बहुत हैं। लेकिन गुरुद्वारों की, मंदिरों की, मस्जिदों की भाषा और आज के आदमियों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है।

ऐसा नहीं है कि मंदिर में जो बोलते हैं, वह गलत बोलते हैं। और ऐसा भी नहीं कि मस्जिदों में जो कहा जाता है, वह गलत है। और ऐसा भी नहीं कि गुरुद्वारा जो संदेश देने बैठा है, वह गलत है। वे संदेश सब ठीक हैं, लेकिन भाषा उनकी इतनी पुरानी पड़ गयी है कि उससे आज के आदमी का कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। आज कोई सम्बन्ध हो भी नहीं सकता। आज के आदमी की सारी शिक्षण की व्यवस्था वैज्ञानिक है। और मंदिरों, मस्जिदों और गुरुद्वारों के सोचने के सारे ढंग पूर्व-वैज्ञानिक हैं, प्रि-साइंटिफिक हैं, उनसे आज के आदमी का कहीं भी कोई तालमेल नहीं है।

ध्यान-केन्द्र से या ध्यान-मंदिर से मेरा प्रयोजन है, वैज्ञानिक

विधियों से, वैज्ञानिक व्यवस्था से आधुनिक आदमी के मन को ध्यान से न केवल बौद्धिक रूप से परिचित कराया जा सके, बल्कि प्रयोगात्मक एक्सपेरिमेंटल रूप से भी उसे ध्यान में प्रवेश दिया जा सके। और बौद्धिक रूप से ध्यान से परिचित होना बहुत कठिन है, प्रयोगात्मक रूप से परिचित होना बहुत सरल है।

कुछ चीजें हैं जिन्हें हम करके ही जान सकते हैं। जिन्हें हम जानकर कभी नहीं कर सकते। असल में उन्हें हम जान ही नहीं सकते, जब तक कि हम कर न लें। ध्यान-मंदिर एक वैज्ञानिक व्यवस्था है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति आज भी आधुनिक भाषा एवं प्रतीकों में ध्यान के विषय में समझ पा सके और न केवल समझ पा सके, बल्कि कर भी सके, और ध्यान से परिचित भी हो सके।

इसमें दो-तीन बातें ख्याल में ले लेने जैसी हैं। कई बार बहुत छोटी-सी चीजें हमारे ख्याल में नहीं होतीं। डॉ० पर्ल्स एक अमरीकन मनोवैज्ञानिक है, जिसने एक बहुत छोटी-सी बात पर जिन्दगी भर प्रयोग किया है। एक बहुत छोटी बात, जिसका हमें ख्याल भी नहीं हो सकता। उसका कहना है कि जो आदमी भोजन ठीक से चबाकर नहीं करता, उस आदमी की जिन्दगी में हिंसा ज्यादा होगी, वह वायलेंट होगा। जो आदमी जिन्दगी में भोजन ठीक से चबाकर करता है, उसकी हिंसा कम हो जायेगी। बहुत अजीब-सी बात मालूम होती है। चबाने से और हिंसा का क्या सम्बन्ध हो सकता है! लेकिन पर्ल्स की तीस साल की खोज यही है कि सभी जानवर हिंसा करते हैं, जब भी हिंसा करते हैं तो दांत से ही करते हैं। आदमी की भी हिंसा उसके दांतों में केन्द्रित है। लेकिन आदमी ने जो भोजन विकसित किये हैं, उनमें उतनी हिंसा नहीं हो

पाती। इसलिए उसके दांत की हिंसा उसके पूरे शरीर में फैल जाती है।

पर्ल्स ने पिछले अनेक वर्षों में जो वायलेंट थे, पागल थे, जो हिंसा के बिना किये रह नहीं सकते थे, उनको सिर्फ भोजन ठीक से चबाने का प्रयोग करवाया और पाया कि तीन महीने के प्रयोग में जो आदमी बिना चीजों को तोड़े-फोड़े नहीं रह सकता था, उस आदमी की हिंसा तिरोहित हो गई।

पर्ल्स ने फिर दांत, हिंसा और मनुष्य के व्यक्तित्व की वैज्ञानिक आधारों पर खोजबीन की और उसकी बात बहुत दूर तक सच साबित हुई। आप प्रयोग करके देखें तो ख्याल में आयेगा। एक पन्द्रह दिन भोजन को इतना चबायें कि जब तक वह लिक्विड, तरल न हो जाये, तब तक उसको भीतर न ले जायें। और चौबीस घंटे आप स्मरण करें कि आपकी हिंसा में रोज फर्क पड़ता है या नहीं पड़ता है। और आप इक्कीस दिन के प्रयोग के बाद दंग हो जायेंगे कि आपके क्रोध में फर्क हो गया है। अब क्रोध के लिए कुछ भी सीधे नहीं करना पड़ा है। करना पड़ा है कहीं और। और अगर आप सीधे-क्रोध के लिए कुछ करेंगे तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। क्रोध दब जायेगा एक तरफ से तो दूसरी तरफ से निकलना शुरू हो जायेगा।

आपको कभी क्रोध आ जाये जोर से तो एक प्रयोग करें। अपनी टेबिल के नीचे दोनों हाथ बांधकर नाखूनों को अपनी ही हथेली में जोर से गड़ा लें फिर तीन बार मुट्ठी जोर से भीचें और खोलें और फिर क्रोध करके देखें। आप बहुत हैरान हो जायेंगे कि तीन बार मुट्ठी को खोलने और बन्द करने में ताकत खो गई जिससे आप क्रोध कर सकते थे। असल में नाखून और दांत हिंसा के केन्द्र हैं। सारे जानवर नाखून और

दांतों से हिंसा कर रहे हैं और चूंकि आदमी के पास दांत कमजोर थे। नाखून कमजोर थे इसलिए उसने हथियार बनाये जिससे उसने दांतों और नाखून का काम लिया। अगर हम आदमी के सारे हथियारों को देखें तो हम पायेंगे कि वे या तो दांत के विस्तार हैं या नाखून के।

ध्यान-केन्द्र पर मैं इस तरह की सारी की सारी वैज्ञानिक व्यवस्था करना चाहता हूं, जहां आपको हिंसा, आपका क्रोध, आपकी चिन्ता, आपका तनाव, आपकी अनिद्रा, आपके चित्त पर आने वाले विकार क्यों पैदा होते हैं, कैसे पैदा होते हैं, इसे आप समझ सकें। वे आपको पैदा करके भी बताये जा सकें और वे कैसे विदा होते हैं, वह भी आपसे ही विदा करवा-कर बताया जा सके।

यह नकारात्मक हिस्सा होगा ध्यान का कि आप में जो व्यर्थ का कचरा इकट्ठा है, कैसे अलग हो सके। और फिर विधायक रूप से मैंने जो चार सीढ़ियां कहीं—बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति, परा—इन चार सीढ़ियों में आपको भीतर कैसे उतारा जा सके, आप इनमें भीतर कैसे उतर जायें, इसकी व्यवस्था भी वहां रहेगी। एक बार बाहर का कचरा फिक जाये तो भीतर उतर जाना बड़ी ही सरल बात है। यह बहुत कठिन नहीं है। शायद हम इस जिन्दगी में फिजूल की बातें सीखने में जितना समय नष्ट करते हैं, उससे बहुत कम समय में ध्यान में गति शुरू हो जाती है।

एक आदमी नर्क जाने के लिए जितनी मेहनत उठाता है, उससे बहुत कम मेहनत में स्वर्ग पा सकता है। हम क्रोध के लिए जितना श्रम करते हैं उससे बहुत कम श्रम में ध्यान में उतर सकते हैं। हम दूसरे के साथ लड़कर जितना श्रम करते हैं, उतना अगर अपने को बदलने में करें तो हम कभी के

अपने भीतर परमात्मा की प्रतिमा को खोजने में सफल हो जायें। हम बाहर के रास्तों पर जितना दौड़ते हैं, अगर उससे सौवां हिस्सा भी हम भीतर के रास्ते पर जायें तो हम अपने पास पहुंच जायें। और जो आदमी अपने पास नहीं पहुंचता, वह बाहर कितना ही दौड़े, वह कहीं भी नहीं पहुंचेगा। जो अपने तक ही नहीं पहुंच पाया, वह कहीं और नहीं पहुंच सकता है। और जिसे अपने भीतर शांति का कोई संगीत नहीं मिला, वह बाहर जगत् के कोने-कोने में घूम आये, उसे नरक के अतिरिक्त कुछ भी मिलने वाला नहीं है। हम अपना नरक या अपना स्वर्ग अपने साथ लेकर चलते हैं।

इस ध्यान-मंदिर को एक वैज्ञानिक व्यवस्था देनी है—साम्प्रदायिक जरा भी नहीं, किसी धर्म से बंधा हुआ जरा भी नहीं और सब धर्मों के लिए खुला हुआ इसे बनाना है। और प्रत्येक धर्म ने ध्यान के जो अलग-अलग प्रयोग खोजे हैं, उनकी भी क्या वैज्ञानिकता है उसका भी प्रयोग करने का उस केन्द्र में ख्याल है।

कोई एक सौ बारह विधियां हैं सारे जगत् में ध्यान की और प्रत्येक विधि अद्भुत है। और एक सौ बारह विधियों से आदमी परमात्मा तक पहुंच सकता है। उसमें एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत विधियां भी हैं। इसलिए एक विधि को मानने वाला दूसरी विधि को बिल्कुल गलत कहता है, लेकिन वे एक सौ बारह विधियां सभी व्यक्तियों को ध्यान और शांति, और आनन्द और सत्य तक ले जाने का मार्ग बन जाती हैं।

इस ध्यान-मंदिर में पूरी एक सौ बारह विधियों का प्रयोग करने का ख्याल है। और तब पहली बार पृथ्वी पर उस तरह का प्रयोग होगा, जिसमें आज तक पृथ्वी पर आविष्कृत ध्यान की क्रियाओं को एक साथ, एक जगह पर हम उपलब्ध करा

सकेंगे। हम एक भी व्यक्ति को वहां खोना न चाहेंगे। वह किसी भी मार्ग से परमात्मा तक जा सके, उसी मार्ग पर ही उसे सुझाव दिये जा सकेंगे।

अजीब-अजीब विधियां हैं ध्यान की, जिनका आपने कभी नाम भी न सुना होगा। एक दो विधि मैं आपसे कहना चाहूंगा। तिब्बत में एक बहुत छोटी-सी विधि है—बैलेंसिंग, संतुलन उस विधि का नाम है। कभी घर में खड़े हो जायें सुबह स्नान करके। दोनों पैर फैला लें और ख्याल करें कि आपके दायें पैर पर ज्यादा जोर पड़ रहा है कि बायें पैर पर जोर पड़ रहा है। अगर बायें पर पड़ रहा है तो फिर आहिस्ते से जोर को दायें पैर पर ले जायें। दो क्षण दायें पैर पर जोर रखें फिर बायें पर ले जायें। एक पन्द्रह दिन सिर्फ शरीर का भार बायें पर है कि दायें पर इसको बदलते रहें। और यह तिब्बती प्रयोग कहता है कि फिर इस बात का प्रयोग करें कि दोनों पर भार न रह जाये और आप दोनों पैर के बीच में रह जायें। और एक तीन सप्ताह का प्रयोग और जब आप बिल्कुल बीच में होंगे—भार न बायें पर होगा न दायें पर होगा—जब आप बिल्कुल बीच में होंगे, तब आप ध्यान में प्रवेश कर जायेंगे। ठीक उसी क्षण में आप ध्यान में चले जायेंगे।

ऊपर देखने पर लगेगा इतनी-सी आसान बात ! करेंगे तो आसान भी मालूम पड़ेगी और कठिन भी मालूम पड़ेगी। बहुत सरल मालूम पड़ती है। दो पंक्तियों में कही जा सकती है। लेकिन लाखों लोग इस छोटे से प्रयोग के द्वारा परम आनन्द को उपलब्ध हुए हैं। जैसे ही आप बैलेंस्ड होते हैं—न बायें पर रह जाते, न दायें पर रह जाते, दोनों के बीच में रह जाते हैं, वैसे ही आप पाते हैं कि वह बैलेंसिंग, सन्तुलन आपकी कॉन्शसनेस का, आपकी चेतना का भी हो गया। चेतना भी

बैलेन्स्ड हो गयी, चेतना भी सन्तुलित हो गयी। और तब तत्काल तीर की तरह भीतर गति हो जाती है।

ऐसी एक सौ-बारह विधियां हैं सारे जगत् में। इन सारी एक सौ-बारह विधियों पर विस्तृत वैज्ञानिक व्यवस्था ध्यान-केन्द्र में देना चाहता हूं। और न केवल आपको समझाया जा सके, बल्कि आपको करवाया भी जा सके। अगर एक विधि से न हो सके तो दूसरी विधि से करवाया जा सके। लेकिन हम उस मन्दिर से आपको निराश न लौटने दें। क्योंकि एक सौ-बारह ये चरम विधियां हैं, इससे ज्यादा हो नहीं सकतीं। अगर एक विधि काम नहीं करती तो दूसरी करेगी। दूसरी नहीं करती तो तीसरी करेगी। और आपकी विधि तत्काल खोज ली जा सकती है कि कौन-सी विधि आप पर काम करेगी। आप पर कौन-सी विधि काम करेगी, इसके खोजने का भी साइंस है, इसके खोजने का भी विज्ञान है।

यदि हम इस समय देश के बड़े-बड़े नगरों में और देश के बाहर भी ध्यान के ऐसे वैज्ञानिक मन्दिर निर्मित कर सकें तो मनुष्य जाति के लिए, जो आज सर्वाधिक पीड़ा और सन्ताप से गुजर रही है और जिसे कोई मार्ग नहीं दिखाई पड़ता है, हम एक मंगलदायी दिशा देने में सफल हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त जो-जो हमने सोचा था कि इससे सब ठीक हो जायेगा, उससे कुछ भी ठीक नहीं हुआ है। सोचा था कि लोगों के पास भोजन ठीक होगा तो सब ठीक हो जायेगा। आज आधी दुनिया के पास भोजन बिल्कुल ठीक है, लेकिन इससे कुछ हल नहीं हो सका है। सोचा था कि लोगों के पास कपड़े होंगे, मकान होंगे, अच्छे रास्ते होंगे, दवा होगी, चिकित्सा होगी, बीमारी कम होगी तो हम शान्त व आनन्दित हो जायेंगे। आज आधी दुनिया के पास सब कुछ है, लेकिन शान्ति व

आनन्द का कहीं भी दर्शन नहीं होता है।

एक बड़ी अद्‌भुत घटना घटी है कि जिनके पास सब है, वे ही सर्वाधिक अशान्त, बेचैन और परेशान हो गये हैं। गरीब मुल्क एक अर्थ में सौभाग्यशाली है। क्योंकि अभी उनकी आशा जीवित है। उन्हें ख्याल है कि समाजवाद आयेगा। धन बढ़ेगा, धन बंटेगा तो सब ठीक हो जायेगा, यह आशा भी उन मुल्कों की टूट गई, जहां यह सब ठीक हो गया है। अब वे गहन निराशा में खड़े हो गये हैं। इतनी होपलेसनेस, इतनी आशारहितता कभी भी मनुष्य के इतिहास में पैदा नहीं हुई थी।

आज अमेरिका जितना आशाहीन है, उतना पृथ्वी पर कोई भी नहीं और आज अमेरिका मनुष्य के इतिहास में सर्वाधिक सम्पन्न, सर्वाधिक सुखी है! हमारे अर्थों में सब कुछ उसके पास है और फिर भी उसे ऐसा अनुभव हो रहा है कि जैसे कुछ भी पास नहीं है। इतनी आशाहीन स्थिति का कारण एक है। जो हमने सोचा था कि जिन बातों से जीवन में आनन्द मिलेगा, वह सब डिस्इल्यूजन्ड हो गया, वे सब भ्रम टूट गये। और अब हमें वापिस लौटकर सुनना पड़ेगा बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को, मुहम्मद को, क्योंकि उन्होंने बहुत-बहुत बार, बहुत पहले यह कहा था कि अगर सब भी मिल जाए मनुष्य को, लेकिन अगर स्वयं का अनुभव न मिले तो कुछ भी मिलता नहीं है। लेकिन हमें उनकी बात ख्याल में न आ सकीं। नहीं आ सकती थीं क्योंकि बात बहुत काल्पनिक मालूम पड़ती थीं, बहुत यूटोपियन मालूम पड़ती थीं। और जो लोग कहते थे कि धन मिल जाये, मकान मिल जाये, उनकी बात बड़ी प्रेक्टिकल और व्यावहारिक मालूम पड़ती थी। इतिहास का यह बड़ा मजाक है कि जो लोग बहुत प्रेक्टिकल थे, वे बहुत यूटोपियन

सिद्ध हुए और जो लोग बहुत यूटोपियन थे, वे ही आज पृथ्वी पर सबसे ज्यादा प्रेक्टिकल सिद्ध होने के करीब हैं।

लेकिन धर्म अब पुराने रास्तों से नहीं लौटाया जा सकता। अब धर्म नये ही रास्तों से प्रवेश करेगा। उसके नये रास्ते वैज्ञानिक और तकनीकी होंगे। अब जैसे एक आदमी हिमालय जाता था आज भी हम सोचते हैं कि एक आदमी हिमालय जाए तो ध्यान में जा सकता है। कभी हमने सोचा नहीं कि हिमालय किसलिए जाता था। जितना ताप कम हो जाए वातावरण में, उतना भीतर प्रवेश आसान होता है। लेकिन कितने लोग हिमालय जा सकते हैं! लेकिन बम्बई में ही एक एयर कण्डीशन्ड मेडिटेशन हॉल वातानुकूलित ध्यान-मन्दिर हो सकता है। अब हिमालय जाने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि हिमालय पर जो ठंडक मिल सकती है, वह बम्बई में भी उपलब्ध हो सकती है। अब हिमालय पर जाना व्यर्थ की दौड़धूप है। अब तो ठीक बम्बई के बीच बाजार में भी उतनी ही शीतलता उपलब्ध हो सकती है, जितनी एक योगी को हिमालय की चोटी पर उपलब्ध होती है। उसके आस-पास भी बर्फ फैलाया जा सकता है—अगर बर्फ से ही कुछ लाभ होना है तो बर्फ फैलाया जा सकता है। अगर ऊंचाई से कुछ लाभ होता हो, जमीन के ग्रेविटेशन गुरुत्वाकर्षण के कम होने से कुछ लाभ होता हो तो बम्बई में भी ग्रेविटेशन कम किया जा सकता है। अगर मौन से लाभ हो सकता है तो बम्बई में भी साउंडप्रूफ इन्तजाम किये जा सकते हैं। और अधिकतम लोगों के लिए हिमालय की चोटी सम्भव नहीं है और अगर अधिक लोग पहुंच जायें तो हिमालय की बर्फ भी पिघल जायेगी। अधिक लोग वहां नहीं पहुंचे हैं, तभी तक वह उपयोगी है। अधिक लोग वहां पहुंच जायें तो वहां भी इतना ही उत्ताप पहुंच

जायेगा, इतनी ही गर्मी पहुंच जायेगी, एवरेस्ट पर जिस दिन जाने का रास्ता सीधा होगा, उस दिन हम बस्तियां वहां भी बसा लेंगे।

आने वाले भविष्य में मनुष्य जहां है, वहीं सारी टेक्नोलॉजी और साइंस का उपयोग किया जा सकता है। और वहीं सारी व्यवस्था की जा सकती है, जो कि एक योगी को बड़ी तकलीफें उठाकर व्यवस्था करनी पड़ती थी। यह विज्ञान के द्वारा सम्भव हो गया है। एक सामान्य आदमी के लिए भी यह सब सुलभ हो सकता है।

अब विज्ञान का उपयोग करके ही, टेक्नोलॉजी का पूरा उपयोग करके ही इस ध्यान के मन्दिर को निर्मित करना है। ध्यान का मन्दिर सिर्फ इसी अर्थ में मन्दिर होगा कि वह ध्यान का, परमात्मा का द्वार होगा; अन्यथा वह एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला होगी। इस वैज्ञानिक प्रयोगशाला में मनुष्य ने जो-जो खोजें की हैं आदमी के सम्बन्ध में, उसका पूरा उपयोग किया जाना चाहिए।

एक आदमी ध्यान करने आता है, लेकिन उसका ब्लड-प्रेशर, रक्तचाप बढ़ा हुआ है। इस आदमी को ध्यान में ले जाना आसान नहीं है। इसको ध्यान में ले जाना कठिन है। इसके रक्तचाप की जो अधिकता है, वह उसके ध्यान में बाधा बनेगी। पुराने आदमी के पास रक्तचाप को नापने का कोई माध्यम नहीं था। लेकिन आज के ध्यान-मन्दिर में रक्तचाप नापने का माध्यम हो सकता है, रक्तचाप को कम करने की व्यवस्था हो सकती है। और फिर ध्यान में ले जाने की सुविधा बनाई जा सकती है। एक बार आदमी ध्यान में चला जाए तो रक्तचाप में जाना मुश्किल हो जायेगा। लेकिन रक्तचाप में डूबे हुए आदमी का ध्यान में जाना मुश्किल होगा।

सारी दुनिया के योगियों ने अल्प आहार पर जोर दिया है, कम खाने पर जोर दिया है। उपवास पर, अल्प-आहार पर, कम भोजन पर, सम्यक् आहार पर सारी दुनिया के योगियों ने जोर दिया है—फिर भी उनके पास अल्प-आहार क्या है, इसकी ठीक-ठीक जांच की कोई व्यवस्था नहीं थी, सिवाय अनुमान के। न उन्हें कैलोरीन का कुछ पता था, न उन्हें भोजन के तत्वों का कुछ पता था। इसलिए कई बार ऐसा हुआ कि अल्प-आहार के नाम पर जो चला, उससे नुकसान ही पहुंचा। आज हमारे पास बहुत वैज्ञानिक व्यवस्था है कि हम जान सकें कि एक आदमी को कितने कैलोरी भोजन की जरूरत है। और हम यह तय कर सकते हैं कि उसकी कितनी कैलोरी कम हो जाए तो उसे ध्यान में आसानी हो जायेगी और कितनी कैलोरी ज्यादा हो जाए तो कठिनाई हो जायेगी।

जैसे अगर ज्यादा भोजन लें तो ध्यान में कठिनाई हो जायेगी। क्योंकि ज्यादा भोजन नींद मांगता है। उसे पचाने के लिए उतनी ज्यादा नींद चाहिए। कम भोजन कम नींद मांगता है और जितनी भीतर निद्रा कम पैदा होती हो उतना ध्यान का जागरण पैदा हो सकता है। ध्यान तो जागरण है। एक आदमी ध्यान करने बैठता है और ज्यादा भोजन करके बैठ जाता है तो फिर कठिनाई होगी। लेकिन ज्यादा भोजन से मतलब सिर्फ पेट में ज्यादा चीजें चली जायें इससे नहीं है। क्योंकि हो सकता है एक आदमी ने बहुत शाक-सब्जी खा ली हो। पेट पर तो भोजन सम्यक् मात्रा में हो, लेकिन पेट पर वजन ज्यादा न हो। और एक आदमी ने थोड़ी-सी ही मिठाई खाई हो तो पेट पर तो वजन कम है, लेकिन भोजन ज्यादा हो गया हो। और आमतौर से साधु-संन्यासी मिठाई खाते रहे,

दूध पीते रहे, रबड़ी लेते रहे हैं, इस बात का बिना ख्याल किए कि वह भारी सिद्ध होगा। लेकिन उसका कोई उपाय नहीं था। उस समय कैलोरी का साफ ख्याल नहीं था। आज हमारे पास सब उपाय हैं।

एक आदमी कितना सोए, इस पर निर्भर करेगा कि उसकी ध्यान में गति कैसी होगी। दोनों बातें सम्बन्धित हैं। अगर ध्यान ठीक हो जाये तो नींद ठीक हो जायेगी। लेकिन ध्यान को ठीक करना उतना आसान नहीं, जितना नींद को ठीक कर लेना आसान है। पहले नींद ठीक कर ली जाये तो ध्यान में गति बहुत आसान हो जाये। अब लोगों के पास नींद ही नहीं है। राय ठीक से सोये नहीं, सुबह ध्यान करने बैठ गये! तो जो आदमी रात भर ठीक से सोया नहीं है वह ध्यान में सिर्फ सोयेगा। इसलिए मंदिरों में पूजा करते हुए, साधु को सुनते हुए लोग अगर सो जाते हैं तो बहुत हैरानी नहीं है। मैंने सुना है कि डॉक्टर सलाह देते हैं कि धर्म-सभा में चले जाना चाहिए, अगर नींद न आती हो तो।

मैंने सुना है एक बहुत बड़ा पादरी अपने एक मित्र को बार-बार कहता था कि तुम कभी मेरा व्याख्यान सुनने आओ पादरी नहीं माना तो एक दिन वह मित्र सुनने गया। पादरी अच्छे से अच्छा जो बोल सकता था, वह बोला। दोनों बाहर जब निकलने लगे तो पादरी ने अपने मित्र से पूछा कि व्याख्यान कैसा लगा। मित्र ने कहा कि बहुत ही ताजगी देने वाला, रिफ्रेशिंग। पादरी के हृदय की धड़कन खुशी से बढ़ गई है। उसने कहा, कौन-सी बात तुम्हें इतनी ताजगी देने वाली लगी? उसने कहा, व्याख्यान के बाद जब मेरी नींद खुली तो मेरा मन बड़ा ताजा था। इतनी ताजगी तो जब

मुझे घर नींद आती है, तब भी नहीं मिलती। तो मैं जरूर आया करूंगा। तुम्हारा भाषण बहुत रिफ्रेशिंग था।

आखिर मंदिरों में, धर्म-कथाओं में आदमी को नींद क्यों आ जाती है? आखिर बात क्या है! बोर्डम, ऊब पैदा हो जाये तो नींद आ जाती है। कोई चीज उबाने लगे तो नींद आ जाती है। और नींद की कमी हो तो जल्दी ही कोई चीज उबाने लगती है।

जिनको नींद नहीं आती, वे मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि हमें नींद नहीं आती। ध्यान से शायद नींद आ जाये? उन्हें पता नहीं कि ध्यान से नींद जरूर ठीक हो जायेगी, लेकिन नींद का ठीक होना ध्यान में जाने के पहले बहुत जरूरी है। अन्यथा ध्यान में जाना मुश्किल हो जायेगा। कठिन इसलिए हो जायेगा कि चित्त की पहली जरूरत नींद की है। और जैसे ही विश्राम मिला चित्त सो जायेगा। और ध्यान में जरूरत है विश्राम में भी जागे हुए होने की—रिलेक्स्ड एण्ड अवेयर। इस तरह कोई ध्यान में प्रवेश कर सकता है। और नींद का नियम यह है कि यहां हम विश्राम में हुए बाहर और भीतर नींद आ गई। रिलेक्स हुए कि नींद आ गई। तो ध्यान में अक्सर लोग सो जायेंगे।

अब यह सारी व्यवस्था आज की जा सकती है, अनिद्रा दूर की जा सकती है। नींद नापी जा सकती है। सपने नापे जा सकते हैं कि कितने सपने आपको आ रहे हैं। आपको ही नहीं पता होता, कितने सपने आ रहे हैं? कैसे सपने आ रहे हैं?

कल ही एक साधिका मेरे पास थी। ध्यान करना है उसे। मैंने उसके सपनों के बाबत पूछा। उसने कहा कि सपनों से क्या मतलब आपको! मुझे ध्यान करना है। मैंने उससे कहा, मुझे पूछना बहुत जरूरी है, क्योंकि सपने ही मुझे

बतायेंगे कि तुम्हें ध्यान करना है या कुछ और करना है। उसने कहा कि सपनों में तो मुझे सिर्फ़ काम-वासना के और हिंसा के, आग लगा देने के—इस तरह के सपने आते हैं। तो मैंने कहा, 'वही तुम्हारा चित्त करना चाहता है। अभी ध्यान मुश्किल पड़ेगा। पहले तो तुम्हारे सपनों को शुद्ध करना पड़ेगा।' जिस व्यक्ति को स्वयं को शुद्ध करना है, वह अगर अपने सपनों को भी शुद्ध न कर पाये तो स्वयं को शुद्ध न कर पायेगा। सपने जैसी साधारण चीज भी अशुद्ध हो तो उसकी सत्ता, आत्मा शांत हो जाये, यह अभी बहुत मुश्किल है। लेकिन आज से पहले सपनों के जांचने की कोई सुविधा न थी।

इस ध्यान-केन्द्र में सपनों के जांचने की पूरी व्यवस्था करना चाहता हूं। अब तो इसकी पूरी वैज्ञानिक सुविधा है। आपका कार्डियोग्राफ लिया जाता है, वैसे रात में आपके सपने का ग्राफ बनाया जा सकता है कि आपने कितनी देर सपने देखे, किस प्रकार के सपने देखे। सपने वायलेंट, हिंसक थे या नॉन वायलेंट, अहिंसक थे; सेक्सुअल कामुक थे या नहीं थे सपने किस तरह के थे, इसकी काफी जानकारी ग्राफ दे देता है। कितने सपने देखे रात भर, यह भी ग्राफ बता देगा। क्यों-कि यह जानकर आप हैरान होंगे कि सपनों के सम्बन्ध में जितनी जानकारी बढ़ी है, उतना ही प्रतीत हुआ है कि चित्त के भीतर भी वेव्ज, तरंगें हैं। सपना चलता है तो तरंगें और तरह की होती हैं, जब सपना बंद होता है तो और ही तरह की तरंगें मस्तिष्क में होती हैं। और बड़े आश्चर्य की बात है कि गहरी नींद में जो तरंगों की स्थिति होती है, वही स्थिति ध्यान में भी तरंगों की होती है।

ध्यान में जब कोई व्यक्ति होता है तो उसके मस्तिष्क की

तरंगें वैसी ही होती हैं, जैसी तरंगें गहरी निद्रा में होती हैं। और जब कोई व्यक्ति सपने में होता है तो तरंगें वैसी ही होती हैं, जैसे जब कोई व्यक्ति चिन्ता में होता है। चिन्ता और सपनों का जोड़ है। गहरी निद्रा और ध्यान का जोड़ है।

यह सारी वैज्ञानिक व्यवस्था इस ध्यान-मंदिर में करने का ख्याल है। और प्रत्येक व्यक्ति को वैज्ञानिक विधि से सहायता पहुंचाई जा सके यह दृष्टि है। और मेरे देखे आज मनुष्य को ध्यान की जितनी जरूरत है, उतनी किसी और चीज की जरूरत नहीं है, क्योंकि आज मनुष्य जितना अशांत है, उतना मनुष्य अशांत कभी भी नहीं था।

ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं, इन्हें सोचना, विचारना। इन्हें मान लेने की कोई जरूरत नहीं है। और यह ध्यान-मंदिर विश्वास करने वालों के लिए नहीं होगा, प्रयोग करने वालों के लिए होगा। विश्वास करने वालों के लिए—वैसे भी अब कहीं नहीं है, सिर्फ कहते हुए दिखाई पड़ते हैं लोग—कहीं कोई विश्वास करने वाला आदमी अब नहीं है! हर आदमी के रथ पर शल्य बैठा हुआ है। एक छोटी-सी कहानी और बात पूरी कर दूं।

कर्ण ने महाभारत के युद्ध में जिस आदमी को सारथी चुना, वही उसकी हार का कारण बना। कर्ण ने जिस आदमी को सारथी चुना उसका नाम था शल्य। शल्य का अर्थ होता है—संदेह, शंका, संशय। अब कर्ण का अर्थ तो आप जानते ही हैं। कर्ण का अर्थ होता है कान। सब शंकायें कान से प्रवेश करती हैं। शल्य को कर्ण ने सारथी चुन लिया और अर्जुन ने कृष्ण को सारथी चुना। सारे युद्ध के लिए निर्णायक, डिसीसिव यही बात हो गई। क्योंकि वह शल्य जो था, उसका नाम शल्य इसीलिए था कि वह बड़ा शंकालु आदमी था। कर्ण बहुत

शक्तिशाली आदमी था। जो लोग जानते हैं और महाभारत जिनके सामने हुआ, उन सबका ख्याल था कि कर्ण से अर्जुन जीत न सकेगा। कर्ण महा-शक्तिशाली था। कर्ण के पीछे सूर्य की शक्ति थी, अर्जुन उससे जीत न पाता। लेकिन अंतत युद्ध में हुआ ऐसा कि अर्जुन जीता और कर्ण हारा। और जो जानते हैं, वे कहते हैं कि गलत सारथी को चुनने के कारण ही कर्ण हारा। क्योंकि वह जो शल्य था, वह पूरे वक्त कर्ण को कहता रहा, अरे तू क्या जीतेगा अर्जुन से। शल्य पूरे वक्त उससे यही कहता रहा। कर्ण धनुष बाण खींच रहा है और शल्य, उसका सारथी कह रहा है, क्यों मेहनत कर रहा है, तू क्या जीतेगा अर्जन से! तेरी जीत बहुत मुश्किल है। एक यह था सारथी। और एक कृष्ण था सारथी अर्जुन के पास कि अर्जुन गांडीव छोड़कर बैठ गया और कृष्ण ने पूरी गीता कही कि वह आदमी लड़े, क्योंकि कृष्ण ने कहा कि जो होना है, वह पहले से निश्चित है, तुझे कुछ करना ही नहीं है। तू सिर्फ निमित्त है। यह जो शल्य मिल गया कर्ण को, यह जो शंका मिल गई कर्ण के मन को, वही उसे डुबाने वाली हो गई।

कोई पहचानता हो, न पहचानता हो, संदेह आज हर आदमी के साथ खड़ा है। इसलिए जो विश्वास, संदेह के आधार में प्रचारित किए गये थे, वे अब काम के नहीं हैं। अब तो पहले शल्य की हत्या करनी पड़ेगी, तब कहीं व्यक्ति के भीतर की चेतना पर कोई परिणाम लाया जा सकता है। और इस शल्य की हत्या बिना विज्ञान के नहीं हो सकती। इसलिए मैं इस ध्यान-केन्द्र में आपके शल्य की हत्या विज्ञान के द्वारा करना चाहता हूं।

विश्वास के माध्यम से अब ध्यान में प्रवेश नहीं होगा। मेरे यह कहते से कि आप मान लें, आप मानेंगे नहीं। मानने का

अब कोई उपाय नहीं रहा। वह वक्त आ गया, वह समय बीत गया है, जब लोग मान लेते थे। अब वह समय कभी भी नहीं लौट सकता। मनुष्य जाति का बचपन सदा के लिए खो गया है। अब आदमी प्रौढ़ है। और इस प्रौढ़ आदमी के पास जो संदेह है, उस संदेह को अगर हम वैज्ञानिक प्रक्रिया से नष्ट न कर सके तो मनुष्य की जिन्दगी में हम कोई भी क्रांति लाने में सफल नहीं हो सकते।

इसलिए इस ध्यान-मंदिर को मैं एक वैज्ञानिक मंदिर कहता हूं, जहां हम धर्म को, ध्यान को वैज्ञानिक मार्ग से मनुष्य तक पहुंचाने का प्रयास कर सकते हैं।

बम्बई, दिनांक १८ जनवरी १९७१

३. मन के पार

प्रश्न—क्या निराकार वस्तु का ध्यान हो सकता है ? और यदि हो सकता है। तो क्या निराकार, निराकार ही बना रहेगा ?

ध्यान का साकार या निराकार से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। और न ध्यान का विषय-वस्तु से ही कोई सम्बन्ध है। ध्यान है। विषय-वस्तु-रहितता। गाढ़ निद्रा की भांति।

लेकिन निद्रा में चेतना नहीं है। और ध्यान में चेतना पूर्णरूपेण है। अर्थात् निद्रा अचेतन ध्यान है। या ध्यान सचेतन निद्रा है।

गाढ़ निद्रा में भी हम वहीं होते हैं, जहां ध्यान में होते हैं, लेकिन, मूर्छित। ध्यान में भी हम वहीं होते हैं, जहां निद्रा में होते हैं। लेकिन, जाग्रत। जागते हुये सोना ध्यान है। या, सोते हुये जागना ध्यान है।

फिर जो जाना जाता है, वह न आकार है, न निराकार है। वह है आकार में निराकार, या निराकार में आकार। असल में वहां द्वन्द्व नहीं है, द्वैत नहीं है और इसलिए हमारे सब शब्द व्यर्थ हो जाते हैं। वहां न ज्ञाता है, न ज्ञेय है; न दृश्य है, न दृष्टा है। इसलिए, वहां जो है, उसे कहना असंभव है। कठिन नहीं, असंभव है।

ध्यान है मन की मृत्यु और भाषा है मन की अर्द्धांगिनी, वह मन के साथ ही सती हो जाती है। वह विधवा होकर जीना नहीं जानती है; जाने तो भी जी नहीं सकती है। और

उसका पुनर्विवाह भी नहीं हो सकता है, क्योंकि, मन के पार जो है, वह उससे विवाह के लिए चिर-अनुत्सुक है। उसका विवाह हो ही चुका है शून्यता से।

प्रश्न—ध्यान किसे कहते हैं, और उसे करने की क्या विधि है ?

निर्विचार चेतना, ध्यान है। और निर्विचारणा के लिए विचारों के प्रति जागना ही विधि है। विचारों का सतत् प्रवाह है मन। इस प्रवाह के प्रति मूर्छित होना—सोये होना —अजाग्रत होना—साधारणतः हमारी स्थिति है। इस मूर्छा से पैदा होता है तादात्म्य। 'मैं' मन ही मालूम होने लगता हूं।

जागें और विचारों को देखें। जैसे कोई राह चलते लोगों को किनारे खड़े होकर देखे। बस, इस जागकर देखने से क्रांति घटित होती है। विचारों से स्वयं का तादात्म्य टूटता है।

इस तादात्म्य-भंग के अंतिम छोर पर ही निर्विचार चेतना का जन्म होता है। ऐसे ही जैसे आकाश में बादल हट जावें तो आकाश दिखाई पड़ता है। विचारों से रिक्त चित्ताकाश ही स्वयं की भौतिक स्थिति है। वही समाधि है।

ध्यान है विधि। समाधि है उपलब्धि।

लेकिन, ध्यान के सम्बन्ध में सोचें मत। ध्यान के सम्बन्ध में विचारना भी विचार ही है। उसमें तो जायें। डूबें। ध्यान को सोचें मत—चखें। मन का काम है सोना और सोचना। जागने में उसकी मृत्यु है। और ध्यान है जागना।

इसलिए, मन कहता है—'चलो, ध्यान के सम्बन्ध में ही सोचें !' यह उसकी आत्मरक्षा का अंतिम उपाय है। इससे सावधान होना। सोचने की जगह, देखने पर बल देना। विचार नहीं, दर्शन—बस यही मूलभूत सूत्र है। दर्शन बढ़ता

है, तो विचार क्षीण होते हैं। साक्षी जागता है, तो स्वप्न विलीन होता है। ध्यान आता है, तो मन जाता है। मन है द्वार, संसार का। ध्यान है द्वार, मोक्ष का। मन से जिसे पाया है, ध्यान में वह खो जाता है। मन से जिसे खोया है, ध्यान में वह मिल जाता है।

प्रश्न—ध्यान की गहराई में उतरने से उसकी दिन-प्रतिदिन वृद्धि किस प्रकार से होगी और ध्यान की अंतिम अवस्था क्या है ?

आप भोजन कर लेते हैं, फिर उसे पचाना नहीं होता है, वह पचता है। ऐसे ही आप जागें विचारों के प्रति। विचारों के प्रति मूर्छा न रहे—इतना आप करें। यह है ध्यान का भोजन। फिर पचना अपने आप होता है। पचना यानी ध्यान का खून बनना—ध्यान की गहराई। भोजन आप करें और पचना परमात्मा पर छोड़ दें। वह काम सदा से ही उसने स्वयं के हाथों में ही रखा हुआ है।

लेकिन, यद्यपि आप भोजन पचा नहीं सकते हैं, फिर भी उसके पचने में बाधा जरूर डाल सकते हैं। ध्यान के सम्बन्ध में भी यही सत्य है। आप ध्यान के गहरे होने में बाधा जरूर डाल सकते हैं। विचारों के प्रति सूक्ष्मतम चुनाव और झुकाव ही बाधा है। शुभ या अशुभ में चुनाव न करें। निंदा या स्तुति दोनों से बचें। न कोई विचार अच्छा है, न बुरा। विचार सिर्फ विचार है। और आपको विचार के प्रति जागना है। सूक्ष्मतम चुनाव भी बाधा है जागने में। तराजू के दोनों पलड़े सम हों तभी, ध्यान का कांटा स्थिर होता है। और ध्यान का कांटा स्थिर हुआ कि तराजू, पलड़े और कांटा सब तिरोहित हो जाते हैं। फिर जो शेष रह जाता है, वही समाधि है, वही ध्यान की अंतिम अवस्था है।

प्रश्न—स्वाध्याय और ध्यान में क्या अन्तर है ?

स्वाध्याय अर्थात् स्वयं का अध्ययन। और स्वयं का अध्ययन विचार के बिना सम्भव नहीं है। इसलिए, स्वाध्याय विचार की ही प्रक्रिया है। बल्कि ध्यान है विचारातीत, वह है विचारों के प्रति जागना। स्वाध्याय है सोचना,—ध्यान है जागना। सोचने में जागना नहीं। क्योंकि,—जागे और सोचना गया। सोच-विचार में होने के लिए निद्रा आवश्यक है।

सोच-विचार, आंखें खोलकर स्वप्न देखना है। स्वप्न, आदिम सोच-विचार है। स्वप्न चित्रों की भाषा में सोचता है। सोचना स्वप्न का सभ्य-रूप है। सोचने में चित्रों की जगह शब्द और प्रत्यय ले लेते हैं।

लेकिन, ध्यान एक अलग ही आयाम है। वह स्वप्न-मात्र से मुक्ति है। वह विचार-मात्र के पार जाना है। स्वप्न अचेतन-मन का चिंतन है। विचार चेतन-मन का चिंतन है। ध्यान मनातीत है।

चेतन मन जब अन्य को विषय बनाता है तो भी वह विचार है, और जब स्वयं को विषय बनाता है भी।

ध्यान में विषय से ऊपर उठना है। विषय-मात्र से। इससे कोई मौलिक भेद नहीं पड़ता है, कि विषय क्या है ? धन है या धर्म, पर है या स्व। मौलिक भेद—रूपांतरण या क्रांति तो तभी घटित होती है, जब चेतना विषय के ही बाहर हो जाती है। क्योंकि, तभी स्व को जाना जा सकता है। जब चेतना के पास जानने को कुछ भी शेष नहीं बचता है, तभी वह स्वयं को जान पाती है। ज्ञेय जब कोई भी नहीं है, तभी आत्मज्ञान होता है।

अर्थात्, स्वाध्याय है स्वयं के सम्बन्ध में सोच-विचार और ध्यान है स्वयं को जानना।

और निश्चय ही जिसे जानते ही नहीं, उसके सम्बन्ध में सोचेंगे-विचारेंगे क्या ? और जिसे जान ही लिया, उसके सम्बन्ध में सोच-विचार का प्रश्न ही कहां है ? इसलिए, स्वाध्याय से बचें तो अच्छा है। क्योंकि, वह भी ध्यान में बाधा है। और सर्वाधिक सबल क्योंकि, वह ध्यान का नाटक बन जाती। मन तो उससे बहुत प्रसन्न होता है। क्योंकि, इस भांति वह पुनः स्वयं को बचा लेता है। लेकिन, साधक भटक जाता है। वह फिर विषय से उलझ जाता है।

मन है विषय—उन्मुखता। उसे चाहिए विषय। वह विषय चाहे कोई भी हो—काम हो या राम, वह विषय-मात्र से राजी है। इसलिए, ध्यान के लिए काम और राम दोनों से ऊपर उठना आवश्यक है। पर और स्व दोनों को समभाव से विदा देनी है ! तभी वह प्रकट होता है, जो कि स्व है और जो कि पर भी है। या कि जो न स्व है, न पर है, वरन् बस है !

प्रश्न—सजगता और साक्षित्व दोनों एक हैं, या उनमें भेद है ?

सजगता और साक्षित्व दोनों एक नहीं हैं, लेकिन एक ही वस्तु के दो छोर अवश्य हैं। वे चेतना के दो अनुभव हैं।

चेतना को एक ऐसा तीर समझें, जिसमें कि दोनों ओर फल हैं। इस तीर का एक फल उस ओर है, जिसके प्रति कि चेतना चेतन है। और दूसरा फल उस ओर है, जहां से कि चेतना चेतन है।

सजगता में पहली बात की ओर इशारा है। साक्षित्व में दूसरी बात की ओर। ध्यान इन दोनों में से किसी भी छोर से शुरू किया जा सकता है। क्योंकि, एक छोर अनिवार्यतः दूसरे छोर को भी अपने साथ ही लपेट पाता है। सजग हों, तो साक्षी

आ जायेगा। साक्षी हों, तो सजगता आ जायेगी।

जहां चेतना है वहां दोनों हैं। जहां अचेतना है, वहां दोनों नहीं है। और जहां एक है, वहां अर्धचेतना, अर्धमूर्छा है। साधारणतः मनुष्य अर्ध चेतना-अर्ध मूर्छा की अवस्था में है। वह अर्ध-सजग, अर्धसाक्षी है। उसका होने का बोध, अतिधूमिल है। जैसा, कुंहासा घिरा हो चारों तरफ ऐसा ही कुछ दिखाई भी पड़ता है। जो देखता है, उसकी भी झलक कभी मिलती है, कभी नहीं मिलती है। ध्यान इस अर्धस्थिति को तोड़ने का प्रयास है। निद्रा में, गहरी निद्रा में, स्वप्न तुल्य निद्रा में, सजगता और साक्षी दोनों सो जाते हैं। ध्यान की पूर्णता में दोनों खो जाते हैं। इसीलिए, समाधि और सुषुप्ति विपरीत होकर भी एक अर्थ में समान है। सुषुप्ति में न सजगता है, न साक्षी है; क्योंकि दोनों ही सो गये हैं। समाधि में भी दोनों नहीं है, क्योंकि दोनों खो गए हैं। सुषुप्ति में मूर्छा पूर्ण है, इसलिए द्वैत नहीं है। समाधि में प्रज्ञा पूर्ण है, इसलिए द्वैत नहीं है। पूर्ण सदा अद्वैत है। लेकिन सुषुप्ति के गर्भ में द्वैत है। जब कि समाधि में द्वैत की मृत्यु हो गई है। ध्यान है प्रक्रिया, मूर्छा से प्रज्ञा की ओर। उसके प्राथमिक प्रारम्भ ध्रुव दो हैं—सजगता और साक्षित्व।

बहिर्मुखी व्यक्तित्व के लिए सजगता से प्रारम्भ करना आसान है। क्योंकि सजगता बाहर से प्रारम्भ होती है। अंतर्मुखी व्यक्तित्व के लिए साक्षित्व से प्रारम्भ आसान है। क्योंकि साक्षित्व भीतरी ध्रुव से शुरू होता है। ध्यान के ये प्रस्थान बिन्दु भिन्न हैं, लेकिन उपलब्धि एक ही है। जैसे ही ध्यान में एक ध्रुव स्पष्ट होता है, वैसे ही दूसरा ध्रुव भी अनिवार्यतः प्रकट हो जाता है। और जैसे ही दोनों ध्रुव पूर्णरूपेण प्रकट होते हैं, वैसे ही दोनों का अतिक्रमण होता है। यह

दो नहीं हैं। फिर तो जो है, वह है।

प्रश्न—ध्यानपूर्वक किया हुआ जाप क्या फलीभूत नहीं हो सकता है?

जब ध्यान ही करना है, तो जाप अनावश्यक है। जपादि, ध्यान से बचने की विधियां हैं। वे विचार को ही पीछे के द्वार से भीतर लाने के उपाय हैं। ध्यान है जागरण—सजगता—साक्षीभाव। और जपादि हैं—ज्यादा से ज्यादा आत्मसम्मोहन। स्वयं को सुलाने के उपाय। नींद न आती हो तो उपयोगी हैं! शांतिदायी भी हैं, वैसे ही जैसे नींद है। शब्द की पुनरुक्ति आत्मसम्मोहन बन जाती है। किसी भी शब्द की। फिर वह चाहे हो—ओम्, चाहे हो कोका-कोला! अशां, मन स्वयं को भूलने के लिए तो सदा ही तैयार है।

इसीलिए तो, मादक द्रव्यों का इतना आकर्षण है। जपादि अरासायनिक मादकतायें हैं। लेकिन भूलने से क्या होगा? विस्मरण विमुक्ति तो नहीं है? जो है, वह फिर लौटेगा, फिर-फिर लौटेगा। बेहोश कितनी देर रहियेगा? नहीं, ऐसे नहीं चलेगा। स्वयं को बदलना ही होगा। विस्मरण नहीं, रूपान्तर ही चाहिए। ध्यान रूपान्तरण है।

और जाप से, इसीलिए, वह आमूल भिन्न है। ध्यान है, स्मृति-पूर्वक होना जो है, बाहर या भीतर, उसे जागते हुए होने का नाम ध्यान है। जाप है क्रिया, ध्यान है अक्रिया। जाप में कुछ करना होगा इसीलिए वह मानसिक है और मन की कोई भी क्रिया कभी भी मन से बाहर नहीं ले जा सकती है। ध्यान है जागना—देखना—साक्षित्व। यह क्रिया नहीं है। यह समस्त क्रियाओं का विश्राम है। इसलिए, ध्यान मन के पार है और जो सजातीय है, उसे जानने का द्वार है।

प्रश्न—क्या कल्पना से कल्पना नहीं कटती है?

कल्पना से कल्पना कटती है। लेकिन, कल्पना करने वाला मन नहीं कटता है। और काटना कल्पना को नहीं, मन को ही है। कल्पना करें या कल्पना न करें, मन दोनों ही स्थितियों में सबल होता है। क्योंकि, दोनों में ही उसकी शक्ति काम आती है। जाना है मन के बाहर और यह उसे सबल करके नहीं हो सकता है। इसलिए ऐसा कुछ करें, जो मन को निर्बल करे, निर्वीर्य करे, मृत करे। लेकिन कुछ भी क्यों न करें, वह सबल ही होगा। क्योंकि, सब करना उसी का करना है। तब न करने—अक्रिया के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। न करना अर्थात् बस होना। अब हैं मात्र और कुछ भी नहीं कर रहे हैं, तभी यह जागरण आता है, जो कि ध्यान है।

और ध्यान मन से मुक्ति है। ध्यान अर्थात् अमन। मन संसार में वाहन है। अमन, सत्य में। संसार का वाहन सत्य के आयाम में साधक तो है ही नहीं, बाधक भी है। जमीन पर चलें बैलगाड़ी से। लेकिन, आकाश में बैलगाड़ी से न उड़ें, तो अच्छा है। यह आपके भी हित में है और बैलों के भी हित में! लेकिन, बैलगाड़ी से परिचित होने के कारण ख्याल आता है कि जो जमीन पर चलती थी, वह आकाश में क्यों न चलेगी? इसमें बैलगाड़ी की कोई भूल नहीं है। भूल है तो आकाश की ही है कि वह पृथ्वी नहीं है।

लेकिन, यह तो कभी हो भी सकता है कि बैलगाड़ी आकाश में भी उड़ सके, क्योंकि पृथ्वी और आकाश भिन्न हैं, लेकिन विपरीत नहीं। पर मन की सत्य में कभी कोई गति नहीं हो सकती है, क्योंकि, संसार और सत्य के आयाम ही विपरीत हैं। जैसे स्वप्न में जागना सम्भव नहीं है। क्योंकि जब तक स्वप्न है, तब तक जागरण नहीं है। और जब जागरण है, तब स्वप्न नहीं है। स्वप्न के अस्तित्व की मूलभूत शर्त ही निद्रा

है। ऐसी ही स्थिति मन और सत्य की है। जब तक मन है, तब तक सत्य नहीं है। और जब सत्य है तब मन खोजे से भी नहीं मिलता है। सत्य को आने देना है, तो मन को जाने दें। उसके रिक्त स्थान में ही सत्य चका सिंहासन निर्मित होता है।

प्रश्न—मन में उठते बुरे भावों को किस प्रकार रोका जाये?

यदि रोकना है तो रोकना होगा ही नहीं। रोका, कि वे आये। उनके लिए निषेध सदा निमंत्रण है। और दमन से उनकी शक्ति कम नहीं होती, वरन् बढ़ती है। क्योंकि दमन से वे मन की और भी गहराइयों में चले आते हैं। और न ही उन भावों को बुरा कहना। क्योंकि बुरा कहते ही उनसे शत्रुता और संघर्ष शुरू हो जाता है। और स्वयं में, स्वयं से संघर्ष, सन्ताप का जनक है। ऐसे संघर्ष से शक्ति का अकारण अपव्यय होता है और व्यक्ति निर्बल हो जाता है। जीतने का नहीं, हारने का ही यह मार्ग है। फिर क्या करें?

पहली बात—जानें कि न कुछ बुरा है, न भला है। बस भाव हैं। उन पर मूल्यांकन न जड़ें, क्योंकि, तभी तटस्थता सम्भव है।

दूसरी बात—रोकें नहीं, देखें। कर्त्ता नहीं, द्रष्टा बनें, क्योंकि, तभी संघर्ष से विरत हो सकते हैं।

तीसरी बात—जो है, उसे बदलना नहीं है, स्वीकार करना है। जो है, सब परमात्मा का है। इसलिए आप बीच में न आयें, तो अच्छा है। आपके बीच में आने से ही अशान्ति है। और अशान्ति में कोई भी रूपान्तरण सम्भव नहीं है। समग्र स्वीकृति का अर्थ है कि आप बीच से हट गये हैं। और आपके हटते ही क्रान्ति है। क्योंकि, जिन्हें आप बुरे भाव कह रहे हैं, उनके प्राणों का केन्द्र अहंकार है। अहंकार है तो वे हैं।

अहंकार गया कि वे गये । आपके हटते ही वह सब हट जाता है, जिसे कि आप जन्मों-जन्मों से हटाना चाहते थे और नहीं हटा पाते थे । क्योंकि, उन सबों की जड़ें आप में ही छिपी थीं । लेकिन, लगता है कि आप सोच में पड़ गये ? सोचिये नहीं, हटिए । बस हट ही जाइये और देखिये । जैसे अंधे को अनायास आंखें मिल जायें, बस ऐसे ही सब कुछ बदल जाता है । जैसे अंधेरे में अचानक दीया जल उठे, बस ऐसे ही सब कुछ बदल जाता है । कृपा करिए और हटिए ।

प्रश्न—क्या ऐसे भी कोई जाप हैं, जो सहज जप व ध्यान का रूप ले लें ?

नहीं । क्योंकि, असहज सहज कैसे हो सकता है ? असहज सहज नहीं बनता है । असहज से, मुक्ति ही सहज में ले जाती है । प्रयास अप्रयास का द्वार नहीं है । प्रयास से मुक्ति ही अप्रयास का द्वार बनती है और सत्य को प्रयास से नहीं पाया जा सकता है । क्योंकि, वह तो है ही और मिला ही हुआ है । प्रयास में हैं हम, इसीलिए उससे चूके हुये हैं, वह है निकट और सदा से उपस्थित ।

लेकिन, हम हैं व्यस्त अर्थात् उसके प्रति अनुपस्थित, पर अनुपस्थिति तो समान ही है । कोई धन पाने में व्यस्त है कोई धर्म पाने में, कोई फिल्मी गीत गाने में व्यस्त है, कोई जप-जाप में, कोई माला फेरने में व्यस्त हैं, कोई धूम्रपान में, कोई कागज के शास्त्रों में उलझा है ।

कोई कागज के पत्तों में लीन है । लेकिन, सभी उसके प्रति अनुपस्थित हैं, जो कि है, सभी ओर, सदा से । एक व्यस्तता से ऊब जाता है मन, तो तत्काल दूसरी व्यस्तता का आविष्कार कर लेता है । धूम्रपान से ऊब जाता है, तो माला फेरता है, दुकान से ऊबता है, तो मंदिर खोज लेता है, लेकिन, अव्यस्त

नहीं होता है । जबकि जो है, वह अव्यस्त क्षणों के अंतराल में ही जाना और जिया जाता है । उसे खोजो मत । वह तो, यह रहा । उसके लिए दौड़ें मत । वह तो, यहीं है । उसके लिए प्रयास मत करें, क्योंकि उसका निर्माण नहीं करना है, वह तो है ही । केवल, बस आप भी हों अभी यहीं और वह प्रकट हो जाता है ।

प्रश्न—आप गुरु का निषेध करते हैं, किन्तु काम तो गुरु का ही कर रहे हैं ?

वह काम ही ऐसा है कि जो निषेध करता है, वही कर सकता है । जो कहता है कि वह गुरु है, वह तो शिष्य होने के योग्य भी नहीं रह जाता है । लेकिन न तो मैं गुरु ही हूं और न मैं गुरु का काम ही कर रहा हूं । मैं किसी को कुछ भी नहीं सिखाना चाहता हूं । वरन् जो कोई कुछ सीखा है, उसे भी अनसीखा करने को कहता हूं । मैं किसी को ज्ञान नहीं देता हूं । उल्टे ज्ञान छीनता हूं !

मैं किसी को भी सिद्धान्त नहीं देता हूं । उल्टे सिद्धांत से मुक्त करता हूं । मैं शास्त्र-भंजक हूं, इसलिए शास्त्र निर्माता कैसे हो सकता हूं ? मैं सत्य की ओर नहीं, बस शून्य की ओर ही सदा इशारा करता हूं । इसलिए, मुझे पकड़ने और पूजने का तो कोई उपाय ही नहीं है । मैं स्वयं शून्य हूं और दूसरों को भी शून्य की ओर पुकार रहा हूं । मैं मोक्ष का नहीं, बस महामृत्यु का ही आश्वासन देता हूं । अब मैं चाहूं भी तो भी, कैसे गुरु बन सकता हूं ? लेकिन, मैं चाहता भी नहीं हूं । क्योंकि मैं जो हूं या नहीं हूं, पर्याप्त हूं, और अन्यथा कुछ भी बनना नहीं चाहता हूं । जब से जाना उसे जो है, तब से कुछ भी बनने की दौड़ ही खो गई है । दौड़ ही नहीं, दौड़ने वाला भी खो गया है । अब तो मैं एक चमत्कार ही हूं

क्योंकि, नहीं हूं और फिर भी हूं।

प्रश्न—मन को स्थिर कैसे करें ? उसका उपाय क्या है ?

मन स्थिर होता ही नहीं। वस्तुतः अस्थिरता-चंचलता का नाम ही मन है। इसलिए मन या तो होता है, या नहीं होता है। मन या अमन बस ऐसी ही दो स्थितियां हैं । मन से सत्य, संसार की भांति दीखता है। संसार अर्थात् चंचलता के द्वार से देखा गया ब्रह्म। और अमन से जो है, वह वैसा ही दीखता है, जैसा है। सत्य है उसे वैसा ही जानना ब्रह्म है। इसलिए मन को स्थिर करने की बात ही न पूछें । मन को स्थिर नहीं करना है, बल्कि मिटाना है। शांत तूफान जैसी कोई चीज देखी-सुनी है ? ऐसे ही शांत-मन जैसी कोई चीज नहीं है। मन अशांति का ही पर्याय है।

और तब उपाय का तो सवाल ही नहीं उठता है । सब उपाय मन के ही हैं। मन मिटाना है तो उपाय में नहीं, निरुपाय में जाना पड़ता है। उपाय करने से मन घटता नहीं, बढ़ता है । क्योंकि, उपाय वही तो करता है। और मन ही जो करता है, उससे मन कैसे मिट सकता है ? फिर क्या करें ? नहीं ! करें कुछ भी नहीं। बस—जागें, देखें, सारी बातें । मन को ही देखें। मन के प्रति होशपूर्ण हों। और फिर धीरे-धीरे मन गलता है, पिघलता है, मिटता है। सारी भाप सूर्योदय की भांति मन की ओस को वाष्पीभूत कर देता है। चाहें तो कहें, कि यही उपाय है।

प्रश्न—साक्षीभाव से मन को देखने से जब मन निर्विचार हो जाता है, उसके बाद क्या परिस्थिति होती है।

परिस्थिति ! परिस्थिति वहां कहां ? बस सब परिस्थितियां मिट जाती हैं, और वही शेष रह जाता है, जो है। और जो है, वह सदा से है। परिस्थिति प्रतिपल बदलती है, वह कभी

नहीं बदलता है। परिस्थिति परिवर्तन है और वह सनातन। परिस्थिति में सुख है, दुख है। सुख दुख में बदलता है, दुख सुख में बदलता है। बदलता है तो और कोई राह भी नहीं है और वहां न सुख है, न दुख है। क्योंकि वहां परिवर्तन नहीं है। फिर वहां जो है, उसी का नाम आनन्द है। ध्यान रहे कि आनन्द सुख नहीं है। क्योंकि सुख वही है, जो दुख में बदल सकता है।

और आनन्द दुख में नहीं बदलता है। आनन्द बदलता ही नहीं है। इसीलिए आनन्द से विपरीत कोई स्थिति नहीं है । आनन्द अकेला है। आनन्द अद्वैत है। ऐसे ही, परिस्थिति में ही जन्म है, मृत्यु है। जहां जन्म है, वहां मृत्यु होगी ही । वे एक ही पेंडुलम की दो परिवर्तन-स्थितियां हैं। जन्म मृत्यु बनता रहता है। फिर मृत्यु जन्म बनती रहती है। परिस्थिति इसी चक्र का नाम है। और वहां—सत्य में, न जन्म है, न मृत्यु कहें कि वहां जीवन है। जन्म की उल्टी परिस्थिति मृत्यु है। जीवन से उल्टा कुछ भी नहीं है। वहां जीवन है, जीवन है और जीवन है। रस आनन्द जीवन का नाम ही ब्रह्म है।

प्रश्न—सजगता से आपका क्या तात्पर्य है ? पल-पल सजग जीवन कैसे जिया जाता है ?

सजगता से तात्पर्य है, बस सजगता। साधारणतः मनुष्य सोया—सोया जीता है। स्वयं की विस्मृति निद्रा है। और स्वयं का स्मरण जागृति। ऐसे जियें कि कोई भी स्थिति स्वयं को न भुला सके। उठते-बैठते, चलते-फिरते, सब में, विश्राम में स्व न भूले। 'मैं हूं' इसकी सतत चेतना बनी रहे। फिर धीरे-धीरे 'मैं' मिट जाता है, और मात्र 'हूं' रह जाता है । क्रोध आये तो जानें कि 'मैं हूं'। और क्रोध नहीं आयेगा। क्योंकि क्रोध केवल निद्रा में ही प्रवेश करता है। विचार घेरें, तो जाने कि 'मैं हूं'। और विचार विदा होने लगेंगे। क्योंकि

वे केवल निद्रा के ही संगी-साथी भर हैं। और जब चित्त से काम, क्रोध, लोभ, मोह सब विदा हो जायेंगे, तब अन्तिम विदा होगी, 'मैं' की। और जहां 'मैं' नहीं, वहीं वह है, जो ब्रह्म है।'

प्रश्न—गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए लक्ष्य की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

सवाल गृहस्थ और संन्यासी का नहीं है सवाल है साक्षी का। मैं जो भी कर रहा हूं, उसका ही मुझे साक्षी होना है। फिर वह करना चाहे घर का हो, चाहे आश्रम का।

निद्रा से जागना है। फिर वह निद्रा चाहे सफेद वस्त्रों में हो, चाहे गैरिक-वस्त्रों में। वस्तुतः तो जो साक्षी है, वही संन्यासी है। और साक्षी कहीं भी हुआ जा सकता है। परिस्थितियां विचारणीय ही नहीं हैं और उनसे भागना व्यर्थ है क्योंकि भागना भय है। भय के प्रति भी जागें। और भाग ही रहे हों, तो भागने के प्रति भी जागें। जागरण वहां पहुंचा देता है, जहां वीतरागता है। वही वास्तविक संन्यास है। निश्चय ही ऐसे संन्यास में बहुत कुछ छूट जाता है। लेकिन वह छोड़ता नहीं है, छूटता है। जैसे वृक्षों से सूखे पत्ते गिर जाते हैं, बस ऐसे ही बहुत कुछ अपने आप गिर जाता है। अज्ञान गिर जाता है। तो अज्ञान की उत्पत्तियां गिर जाती हैं। मूर्छा जाती है, तो मूर्छा के साथी चले जाते हैं। गृहस्थ और संन्यासी ऐसे भेद व्यर्थ हैं। मूर्छित और जागृत ऐसे भेद में ही सार्थकता है।

मूर्छित ही गृहस्थ है, क्योंकि वह शरीर से बंधा है। शरीर गृह है। और जागृत ही अगृही है, संन्यासी है। क्योंकि उसने उसे पहचान लिया है, जो कि शरीर नहीं है—अशरीरी है। आह ! उसे पहचानते ही फिर संसार नहीं रह जाता है। और जो शेष रह जाता है, वही ब्रह्म है।

प्रश्न—आपका साहित्य भी शास्त्रों से भिन्न नहीं फिर आप

शास्त्रों का विरोध क्यों करते हैं ?

मैं साहित्य का विरोधी नहीं हूं। लेकिन शास्त्रीयता का अवश्य विरोधी हूं। शास्त्रीयता सत्य की शत्रु है। सत्य का दावा ही सत्य की शत्रुता है। सत्य सदा विनम्र है और शास्त्र सदा अविनम्र। सत्य का कोई संप्रदाय नहीं है। सब संप्रदाय शास्त्र के हैं। सत्य का कोई मत नहीं है। वस्तुतः तो जहां मतों का अन्त है, वहीं सत्य का आरम्भ है।

लेकिन शास्त्र का मत है। शास्त्र अर्थात् मत। गीता साहित्य की भांति अनुपम है, लेकिन शास्त्र की भांति खतरनाक। कुरान साहित्य की भांति अद्वितीय है, लेकिन संप्रदाय की भांति अत्यंत विषाक्त। इसलिए मैं चाहता हूं साहित्य हो, लेकिन शास्त्र न हों। साहित्य मुक्त करता है। शास्त्र बांधते हैं।

प्रश्न—क्या शास्त्र ऋषियों की अनुभूति नहीं हैं ? यदि हैं, तो क्या उनसे हमें लाभ नहीं हो सकता है ?

शास्त्र में स्वयं अनुभूति नहीं है। यद्यपि उसका जन्म अनुभूति से हुआ है। जैसे शब्दकोष के 'घोड़े' में घोड़ा नहीं है। ऐसे ही शास्त्रों के शब्दों में भी सत्य नहीं है। 'घोड़ा' अस्तबल में है। 'घोड़ा' शब्द शब्दकोष में है। 'परमात्मा' शब्द शास्त्र में है। और शब्द 'परमात्मा' नहीं है। उसे पाना है तो सब शब्द छोड़ने पड़ते है। और शास्त्रों में शब्द ही हैं। अर्थात् उसे पाना है, तो सब शास्त्र छोड़ने पड़ते हैं। शास्त्र से वह नहीं मिलता है। यद्यपि उसके मिलने से शास्त्र जन्म सकते हैं। शास्त्र है उसे कहने की चेष्टा जो कि नहीं कहा जा सकता है। इसीलिए जो साहित्य सत्य होने का दावा करता है, वह इसी कारण असत्य हो जाता है। जो जानता है, वह यह भी जानता है कि जो जाना गया है, वह कहा नहीं जा सकता है। शास्त्र होने के दावेदार साहित्य में

यह विनम्रता नहीं होती है। और इसीलिए मैं शास्त्र को विक्षिप्त हो गया साहित्य कहता हूं।

ऋषि सत्य को कहने की चेष्टा करते हैं, लेकिन कह नहीं पाते हैं। असल में जिसे मौन में पाया है, उसे शब्द में नहीं कहा जा सकता है। अनुभूति है अनंत और अभिव्यक्ति है सीमित; अनुभूति है मनातीत और अभिव्यक्ति है मानसिक; और इसलिए सत्यानुभूति और सत्याभिव्यक्ति में तालमेल असम्भव है। शास्त्र इसके प्रमाण हैं—इस असम्भावना के और इस अपरिहार्य असफलता और असमर्थता के और इस असम्भावना में ही उनका सौंदर्य भी है। और जो इस सत्य को जानता है, वह उससे लाभ भी उठा सकता है। लेकिन जो यह नहीं जानता है, वह शास्त्रों से बंध जाता है और असीम हानि का भागीदार होता है।

शब्द का एक ही लाभ है, शब्द से मुक्ति। शास्त्र का एक ही लाभ है, शास्त्र से छुटकारा। और धन्य हैं वे लोग जो शास्त्र से मुक्त हो जाते हैं; क्योंकि वे वहां पहुंच जाते हैं, जहां की सत्य है। और अभागे हैं वे लोग, जो शास्त्र से बंध जाते हैं; क्योंकि वे वहीं ठहर जाते हैं जहां कि मात्र शब्द हैं। और शब्द से ज्यादा रिक्त ओर थोथी और कोई वस्तु नहीं है। शब्द संकेत है। संकेत पकड़ने के लिए नहीं है। जैसे मैं अंगुली से चन्द्रमा को इंगित करूं और कोई मेरी अंगुली को ही चन्द्रमा समझकर पकड़ ले! ऐसी ही भूल शब्द को पकड़ने से होती है। अंगुली को छोड़ना है और चन्द्र को देखना है। चन्द्र को देखने के लिए अंगुली को बिल्कुल ही छोड़ देना है। अंगुली से बंधी दृष्टि चन्द्र को कैसे देख सकती है?

यह बड़े मजे की बात है, कि शास्त्र का लाभ वे ही उठा पाते हैं जो शास्त्र को छोड़ पाते हैं। निश्चय ही यह साहस

सिर्फ सच्चा धार्मिक चित्त ही जुटा पाता है। धर्म है ही साहस। लेकिन जो भयवश धार्मिक हैं, वे तो बेचारे शास्त्रों में सुरक्षा खोजते हैं, वे कैसे उन्हें छोड़ सकते हैं! और अपनी इस कमजोरी को ही वे धर्म मान लेते हैं। और जब धर्म भी कमजोरियों का बचाव बनता है, तब वह नष्ट हो जाता है। धर्म हमारी कमजोरियों को बचाने के लिए नहीं, मिटाने के लिए है। धर्म से बड़ा साहसिक अभियान नहीं है क्योंकि धर्म स्वयं का आमूल रूपांतरण है। और यह रूपान्तरण तभी सम्भव है, जब हम अपनी समस्त सुरक्षाओं, कमजोरियों, अज्ञानों, भयों और पलायनों को छोड़ने को तैयार हों।

लेकिन हम तो उल्टे स्वयं को उघड़ने से बचाते हैं। धर्म को हम अपनी नग्नताओं के लिए वस्त्र बना लेते हैं। और जबकि धर्म है मात्र अग्नि। वह स्वयं को जलाने के लिए है—स्वयं को बचाने के लिए नहीं। इसलिए ही तो हमने धर्म से भी बचने के लिए मिथ्या धर्म विकसित कर लिए हैं। सत्य से बचने के लिए शब्द पकड़ लिए हैं। सत्य और स्वयं के बीच शास्त्रों की दीवार खड़ी कर ली है। सत्य के पलायन के लिए संप्रदाय बना लिए हैं।

प्रश्न—आप साधुओं-संन्यासियों के विरोधी क्यों हैं?

मैं और साधुओं का विरोधी! आपके प्रश्न ने तो मुझे बड़े आश्चर्य में डाल दिया है! साधुता के नाम पर जो असाधुता चलती है, मैं उसका ही विरोधी हूं। और साधुता प्रकट हो सके, इसलिए ही यह विरोध है। ध्यान रहे कि असाधुता से साधुता को हानि नहीं है। हानि है सदा मिथ्या–साधुता से। असली सिक्कों को कंकड़-पत्थर हानि नहीं पहुंचाते हैं सिर्फ नकली सिक्के। वे असली सिक्कों को चलन के ही बाहर कर देते हैं! झूठे-साधुओं के कारण साधुता के प्रकट होने की

सम्भावनायें ही क्षीण हो गई हैं । झूठे साधुओं के कारण साधुता ही अपमानित हो गई है और झूठी-साधुता का पहला लक्षण है : आरोपित साधुता ।

साधुता आती है, लाई नहीं जाती । मैं साधु हो सकता हूं, बन नहीं सकता । अभ्यास से, आरोपण से, साधुता मात्र दीखती है, होती नहीं । साधुता है सरलता—सहजता । और अभ्यास है सदा जटिल ! अभ्यास है द्वन्द्व और दमन । इसलिए अभ्यास हो सकता है । वैसा होना असम्भव है । बंध्या-पुत्र जैसी ही वह असम्भावना है ।

सरलता आती है समझ से । स्वयं को उसकी समग्रता में समझना ही सरलता का द्वार है । जो स्वयं को समझ लेता है, वह पाता है कि साधु हो गया है । लेकिन वह साधु 'बनता' नहीं है । क्योंकि 'बनता' तो सिर्फ वही है, जो जानता है कि 'नहीं' है । असाधु ही साधु 'बनते' हैं । जो हो जाते हैं, वे तो बस हो जाते हैं । उनकी साधुता स्वयं के समक्ष एक आविष्कार होती है । और तथाकथित असाधु-साधुओं की साधुता दूसरों के समक्ष मात्र एक घोषणा सत्य-साधुता इतनी सहज और सरल है कि उसकी घोषणा का सवाल ही नहीं है । वह तो आती ही स्वयं के विसर्जन से है । अहंकार जहां है, वहां वह नहीं है।

लेकिन मिथ्या-साधुता अहंकार का ही सूक्ष्मतम सृजन है । इसीलिए तो वह वस्त्रों में ही होती है । इसीलिए तो वह संप्रदायों में होती है—क्रिया-कांडों में होती है–पद-पदवियों में होती है । आह .! कैसा आश्चर्य है कि साधु भी जैन होते हैं, हिन्दू होते हैं, मुसलमान होते हैं ! कम से कम साधु को बस मनुष्य होना चाहिए न ? साधु भी महामंडलेश्वर होते हैं, जगत्गुरू होते हैं, पोप होते हैं । कम से कम साधु तो पद-पदवियों के बचकानेपन से मुक्त होने चाहिए न ? लेकिन ऐसा

नहीं है; क्योंकि साधु ही साधु नहीं हैं ।

प्रश्न—आप संन्यास के विरोधी हैं या संन्यासियों के ?

मैं संन्यास को जीवन-सौंदर्य की परमावस्था कहता हूं । वहीं सत्य के फूल खिलते हैं । और शिवत्व की सुगंध भी जन्मती है । इसलिए मैं संन्यास में ही जीवन की परम सार्थकता और धन्यता को देखता हूं । जिसने संन्यास नहीं जाना, उसने जीवन भी नहीं जाना । जीवन को जानते ही वे हैं, जो जीवन को मुक्ति बना लेते हैं । संन्यास का अर्थ है, ऐसा जीवन जो बंधन नहीं है ।

लेकिन तथाकथित संन्यासियों के गिरोहों ने संन्यास को भी बंधनों की एक शृंखला बना लिया है । गृहस्थ है कुआं, तो संन्यस्थ है खाई । तथाकथित संन्यासी गृहस्थ का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है । वह, बंधनों से मुक्ति नहीं है—बंधनों की बदलाहट मात्र है । और प्रतिक्रिया में सदा ऐसा ही होता है । प्रतिक्रिया क्रांति नहीं है । प्रतिक्रिया है विरोध । और विरोध सदा उससे ही बंधा होता है, जिसका कि वह विरोध है । वह उसकी ही सातत्य शृंखला की एक लड़ी है । उसमें सातत्य टूटा नहीं जारी है । इसीलिए संन्यास की व्यवस्था गार्हस्थ्य की ही सततता है ।

वस्तुत: संन्यास की व्यवस्था हो नहीं सकती है । संन्यास है ही व्यवस्था का अतिक्रमण । इसलिए जैसे ही संन्यास को व्यवस्था मिलती है, संगठन मिलता है, अनुशासन और अनुशास्ता मिलते हैं, वैसे ही संन्यास मर जाता है । संन्यास व्यक्तिगत अनुभूति है । और संन्यासी सामाजिक संस्था है । तथाकथित संन्यासियों के कारण संन्यास का संगीत नष्ट हो गया है । इसलिए मैं कहता हूं संन्यास तो हो और खूब हो, लेकिन तथाकथित संन्यासी बिल्कुल न हों, तो अच्छा है ।

प्रश्न—यदि आप अध्यात्म का ही प्रचार करें, तो क्या यह अच्छा नहीं होगा? आप बीच-बीच में राजनीति तथा अन्य विषयों की चर्चा क्यों ले बैठते हैं?

मैं जीवन को देखता हूं उसकी समग्रता में। और ऐसी समग्र दृष्टि को ही कहता हूं अध्यात्म। राजनीति एक विषय है, गणित एक विषय है, नीति एक विषय है। अध्यात्म उसी भांति एक विषय नहीं है। अध्यात्म है—'पूर्ण जीवन'।

अध्यात्म है जीवन को उसकी अखंडता में जानना और जीना। इसलिए राजनीति अपने खंड में जी सकती है, गणित अपने खंड में, लेकिन अध्यात्म नहीं। क्योंकि अध्यात्म का कोई खंड ही नहीं है। अध्यात्म तो पूर्ण जीवन की कला है। वह तो पूर्ण जीवन को स्पर्श करेगा। यद्यपि राजनीति नहीं चाहेगी कि अध्यात्म उसे छुये। न ही विज्ञान ऐसा चाहेगा। न ही वाणिज्य। क्योंकि अध्यात्म जिसे छूता है, उसे ही बदल देता है। राजनीति पर अध्यात्म की छाया पड़ते ही वह, वही नहीं हो सकती है, जो है। और न ही विज्ञान वही होगा। और न ही वाणिज्य।

इसलिए यह उनके हित में है कि अध्यात्म उन्हें न छुये। लेकिन यह अध्यात्म के हित में नहीं है। अध्यात्म तो खंड से बंधते ही रक्तहीन हो जाता है और पीला पड़ जाता है। वह तो अखंड का होकर ही बस स्वस्थ हो सकता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि अध्यात्म राजनीतिक बने या कुछ और। उसे स्वयं कुछ भी नहीं बनना है, उसका तो दृष्टि-पात ही पर्याप्त है, वह देखे भर राजनीति की ओर, विज्ञान की ओर, वाणिज्य की ओर। उसकी दृष्टि—उसका जागरूक होना ही क्रांति बन जायेगा।

मैं इसी दिशा में प्रयास कर रहा हूं और करता रहूंगा।

लेकिन अनेक न्यस्त-स्वार्थों को इससे भय लगता है। वे अध्यात्म की भी सीमायें तय करना चाहते हैं। उनका यह प्रयास स्वयं को बचाने की चेष्टा है और अध्यात्म को मारने की। शोषण की व्यवस्था नहीं चाहेगी कि अध्यात्म समस्त व्यवस्था में रुचि ले। क्योंकि, अध्यात्म शोषण के जाल को कैसे बरदाश्त कर सकता है। और जो अध्यात्म करता है, वह निर्वीय है और नपुंसक है। वस्तुतः वह अध्यात्म ही नहीं है, ओर ऐसा थोथा-अध्यात्म ही प्रचलित है। ऐसे अध्यात्म ने निश्चय ही अफीम का कार्य किया है; मैं ऐसे किसी भी अफीम के व्यव-साय में सम्मिलित नहीं होना चाहता हूं।

और रह गई अध्यात्म के प्रचार की बात। सो मैं किसी भी भांति के प्रचार में उत्सुक नहीं हूं। मनुष्य को सब भांति के प्रचार से ही तो मुक्त होना है। जब चेतना सब प्रकार के प्रचार से ऊपर उठती है, तभी उसे जान पाती है, 'जो है' प्रचार है, किसी को संस्कारित करना। और अध्यात्म है—संस्कार मुक्ति। इसलिए राजनीति का प्रचार हो सकता है। लेकिन अध्यात्म का नहीं। और जो अध्यात्म को प्रचार बताते हैं, वे छद्म वेष में राजनीतिज्ञ ही हैं। क्योंकि इससे तो कोई भी भेद नहीं पड़ सकता है। वे 'अ' को मानते हैं या 'ब' को यह सवाल ही नहीं है। गुरू बदलने का सवाल नहीं है। गुरु बदलना करवट बदलना है। मैं तो उन्हें जगाना चाहता हूं ताकि वे सबसे मुक्त हो सकें। ताकि वे स्वयं हो सकें और निश्चव ही स्वयं होना, सबसे बड़ी साधना है। इससे ही बचने को तो जब सोये हुए हैं—विश्वासों में, श्रद्धाओं में, अंधताओं में। और यदि उनके श्रद्धा-स्वप्नों से कोई उन्हें जगाता हो तो वे नाराज हों—खिन्न हों, तो यह तो स्वा-भाविक ही है न? लेकिन मैं यह धन्यवाद रहित कार्य करता

रहूंगा। मेरे लिए भगवान की यही आज्ञा है।

प्रश्न—अगर आप विरोध को खड़ा न करके सन्तों का सहयोग प्राप्त करें, तो क्या आपका मिशन जल्दी सफल नहीं होगा ?

पहली तो बात यह कि मेरा मिशन ही विरोध खड़ा करना है। क्योंकि, उससे जन्मता है विचार। विचार का बीज है संदेह, और विचार की प्रक्रिया है द्वन्दात्मक। इसलिए विरोध मैं खड़ा करता हूं। जहां साधरणतः विरोध नहीं दीखता, वहां भी विरोध खोजता हूं। वाद प्रतिवाद की प्रक्रिया से ही संवाद उपलब्ध होता है। इसलिए जो मेरा विरोध करते हैं, वे ही मेरे सहयोगी हैं। और मैं किसी से न सहयोग की अपेक्षा रखता हूं न असहयोग की। जिससे जो मिल जाता है, उसे ही परमात्मा का प्रसाद मानकर अनुगृहीत हो जाता हूं और मेरा मिशन ऐसा नहीं है कि जो जल्दी सफल होते हैं।

मौसमी फूलों जैसे मिशन भी होते हैं। वे जल्दी खिलते भी हैं, जल्दी मुरझा भी जाते हैं। और ऐसे भी मिशन होते हैं, जो कि सनातन होते हैं, इसीलिए उनके साथ 'मेरा-तेरा' जोड़ना भी व्यर्थ है। वे परमात्मा के ही मिशन हैं। इसीलिए मैं अक्सर कहता हूं कि मेरा कोई मिशन नहीं है। जो है प्रभु का है। और इसलिए सफलता-असफलता भी उसकी ही है। मैं प्रचारक नहीं हूं। न ही कोई उपदेशक हूं। मैं तो निद्रा तोड़ना चाहता हूं। मैं तो लोगों को उनकी मूर्छा से झकझोरना चाहता हूं, ताकि वे स्वयं देख सकें और सोच सकें। मैं उनके लिए नहीं सोचना चाहता हूं। प्रचारक यही करता है। उपदेशक यही करता है। वे सब मिलकर लोगों को सुलाते हैं। क्योंकि सिर्फ सोये हुए लोग ही विश्वास कर सकते हैं, नेता बना सकते हैं, गुरु बना सकते हैं। जागा हुआ व्यक्ति

तो स्वयं अपना मार्ग चुनता है। वह किसी का शिष्य या अनुयायी नहीं होता है। शिष्य और अनुयायी तो सिर्फ मूर्छित व्यक्ति ही होते हैं। निश्चय ही सोये हुए व्यक्तियों को जगाने के प्रयास से वे नाराज होते हैं। लेकिन उनकी नाराजगी से भी मैं खुश होता हूं। क्योंकि उनकी नाराजगी भी तो जागने की ही शुरुआत है !

प्रश्न—क्या आपकी अनेक बातों से श्रोता खिन्न नहीं होते हैं ?

आह ! काश ! वे खिन्न ही हो जावें। मैं इसके लिए ही तो भगवान से प्रार्थना करता रहता हूं। उसके लिए ही तो मेरा सारा प्रयास है। मैं उन्हें संतुष्ट नहीं करना चाहता हूं। मैं तो उन्हें सब भांति के धक्के देना चाहता हूं। ताकि वे सोचें—सोचना सीखें। सोच-विचार की तो जैसे मृत्यु ही हो गई है। विचार को पुनरुज्जीवित करना है,—और इसके लिए किसी को गालियां खाने के लिए तैयार होना ही पड़ेगा। मैं तैयार हूं।

लेकिन दुर्भाग्य कि लोगों की नाराजगी भी अत्यन्त अल्पजीवी है, उनकी खिन्नता भी जैसे स्वप्न में ही है। क्योंकि वे थोड़ी ही देर में फिर खर्राटे लेते हुए सुनाई पड़ते हैं। ज्यादा से ज्यादा वे करवट बदल लेते हैं और फिर सो जाते हैं। अर्थात् वे मुझसे ही सहमत हो जाते हैं और सो जाते हैं। मैं उन्हें स्वयं से सहमत नहीं करना चाहता हूं। मैं नहीं चाहता हूं कि वे मुझे मान लें मैं तो हूं ही नहीं। वही है। अब जो उसकी मर्जी वह जो करा रहा है, वही कर रहा हूं।

और अब रह गये सन्त ? सो जिनका सहयोग सत्य के लिए मिलता है, वे ही हैं सन्त। सत्य के लिए सहयोग मांगना नहीं पड़ता है,—और सन्तों से तो बिल्कुल ही नहीं। वह

मिलता ही है। और मिल ही रहा है।

प्रश्न—धार्मिक व्यक्ति का व्यावहारिक जीवन किस प्रकार का होता है?

पहली बात तो यह है कि धार्मिक व्यक्ति के जीवन में व्यावहारिक और पारमार्थिक ऐसे खंड नहीं होते हैं। धार्मिक जीवन अखंड जीवन है। जहां खंड हैं, वहां धर्म नहीं है। खंडित चित्त ही तो रोग है। वही तो अधर्म है।

दूसरी बात यह है कि धार्मिक व्यक्ति का स्वयं का जीवन भी नहीं होता, क्योंकि स्व के मिटने से ही तो वह धर्म को उपलब्ध होता है। धार्मिक व्यक्ति स्वयं नहीं जीता, उसमें से तो प्रभु ही जीता है। धार्मिक व्यक्ति तो बन जाता है बस माध्यम। बांसुरी ही रह जाता है वह। स्वर और संगीत उसमें से बहते हैं, लेकिन वे उसके नहीं होते।

तीसरी बात यह है कि धार्मिक जीवन के प्रकार नहीं होते हैं। जैसे सागर का पानी सब जगह खारा है, ऐसे ही धार्मिक जीवन का स्वाद भी सब जगहों और सब कामों में एक जैसा ही है। धर्म की अंतरात्मा सदा-सर्वदा एक है, एकरस है।

चौथी बात यह है कि आपका सवाल बाहर से पूछा गया सवाल है। धर्म में प्रवेश करते ही ऐसे सवाल तत्काल गिर जाते हैं। धर्म अनुभूति में अद्वैत है। लेकिन बुद्धि अपनी सीमा में प्रत्येक विषय को अनिवार्यतः खंड-खंड कर देती है। क्योंकि विचार की प्रक्रिया ही विश्लेषण है। अनुभूति है सदा सांश्लिष्ट और विचार है विश्लेषण, इसलिए अनुभूति और विचार का कहीं भी मिलन नहीं होता है। अनुभूति, परमार्थ और व्यवहार एक हैं, ब्रह्म और माया एक है। परमात्मा और पदार्थ एक हैं। मुक्ति और बंधन एक हैं। लेकिन, बीच में जरा सा विचार आया कि सब 'एक' तत्काल दो हो जाते हैं। और

विचार जिन्हें भी तोड़ता है, उनके बीच अलंघ्य खाई रह जाती है। फिर विचार उन्हें जोड़ने की कोशिश में भी पड़ता है, लेकिन वह काम व्यर्थ है क्योंकि, विचार ही तो खाई है। विचार जोड़ नहीं सकता, वह तो केवल तोड़ ही सकता है। विचार का जहां अभाव है, वहां जोड़ है। वस्तुतः वहां कभी कुछ टूटा ही नहीं है। बचने की तरकीब है।

सोचना है सदा तट पर और जीवन है सदा सागर की गहराइयों में। छोड़ें तट और कूदें। कितने जन्मों-जन्मों से तो आप सोच रहे हैं? मैं कब से आपको तट पर ही देख रहा हूं? अब बहुत हुआ। अब तो कूदें। देखें-सुनें, कबीर क्या कह रहे हैं। 'जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। मैं बावरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ।'

प्रश्न—कहीं-कहीं पर धर्म और व्यवहार में विरोध खड़ा हो जाता है, ऐसी परिस्थिति में सही मार्ग क्या है?

पहली बात तो यह है कि धर्म और व्यवहार में कभी भी विरोध खड़ा नहीं होता है। वह असम्भव है। जैसे प्रकाश और अंधकार में कभी भी विरोध खड़ा नहीं होता है, ऐसे ही जहां प्रकाश है, वहां अंधकार है ही नहीं। तब विरोध खड़ा हो ही कैसे सकता है? उपस्थित प्रकाश और अनुपस्थित अंधकार में तो विरोध असंभव ही है न? विरोध के लिए कम-से-कम दोनों की उपस्थिति तो एक ही हाथ होनी चाहिए न। और ऐसा भी नहीं होता है। जहां प्रकाश है, वहां अंधकार नहीं है। जहां प्रकाश नहीं है, वहां अंधकार है। असल में अंधकार का अर्थ ही है, प्रकाश का न होना। उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है। वह तो बस अभाव है किसी का; अनुपस्थिति है किसी की। ऐसा ही व्यवहार है। ऐसा ही संसार है। ऐसा ही अज्ञान है। ऐसा ही अधर्म है। वे सब

धर्म की अनुपस्थिति के भिन्न-भिन्न भाग हैं। जब धर्म आता है, तब वे बस चुपचाप हो जाते हैं। धर्म नहीं है, तभी तक वे हैं।

दूसरी बात यह है कि उधार, सुने हुये धर्म को हम धर्म मान लेते हैं। इससे ही कठिनाई खड़ी होती है। साधारणतः हमारे लिए व्यवहार तो है सत्य और धर्म है कोरा शब्द, इसलिए ही दोनों में विरोध खड़ा होता है। और ध्यान रहे कि यह कहीं-कहीं नहीं, कभी-कभी नहीं, वरन् हर कहीं और हर पल खड़ा होता है। यही स्वाभाविक है। यह होगा ही क्योंकि अंधकार है वास्तविक और प्रकाश है केवल विश्वास! विश्वास अंधकार को तो मिटाता ही नहीं, उल्टे हमें और अंधा कर जाता है। प्रकाश चाहिए। प्रकाश का विश्वास नहीं। प्रकाश के विश्वास से अंधकार नहीं मिटता है। धर्म चाहिए, धर्म का विश्वास नहीं। धर्म से व्यवहार रूपांतरित होता है और परमार्थ और व्यवहार एक ही हो जाते हैं। या ऐसा कहें तो भी ठीक है कि व्यवहार ही रह जाता है। और जो शेष रह जाता है, उसमें कोई द्वन्द्व नहीं है, इसलिए कोई दुविधा भी नहीं है।

तीसरी बात यह है कि अलग-अलग परिस्थिति में अलग-अलग मार्ग नहीं हैं और न ही अलग-अलग सहीपन है। मार्ग तो एक ही है और जो सही है, वह भी एक ही है। और उस एक का नाम ही धर्म है। उसे जानते ही सभी परिस्थितियां मूलतः समान हो जाती हैं। आकार तो उनके भिन्न रहते हैं, लेकिन आत्मा भिन्न नहीं रह जाती है। जैसे एक अंधा आदमी सोच सकता है कि अलग-अलग अंधकारों में अलग-अलग प्रकाश आवश्यक होते होंगे या अलग-अलग स्थितियों में मार्ग खोजने के लिए अलग-अलग आंख होती होगी, ऐसा

ही हमारा यह सोचना भी है।

चौथी बात यह है कि धर्म को खोजें। धर्म और व्यवहार में सामंजस्य को नहीं। जैसे सामंजस्य की खोज ही बताती है कि धर्म का अभी पता नहीं है। धर्म के आगमन पर तो कभी-कभी सामंजस्य खोजना पड़ता है। क्योंकि, सामंजस्य के लिए भी वैसा ही द्वैत आवश्यक है जैसा कि संघर्ष के लिए। और धर्म का आगमन अद्वैत का आगमन है। फिर तो जो है, वही परमार्थ है और वही व्यवहार है। धर्म का आगमन अविरोध का आगमन है। इसलिए फिर न विरोध है किसी से, न सामंजस्य ही।

पांचवीं बात यह है कि धर्म को स्वयं को छोड़ और कहीं न खोजें, क्योंकि, और कहीं से भी मिले धर्म से आपकी समस्या नहीं मिट सकती है। वस्तुतः तो और कहीं से मिले धर्म से ही तो वह समस्या पैदा हुई है। उधार धर्म अनिवार्यतः समस्या है, ऐसी समस्या जिसका कि कोई भी समाधान नहीं है, क्योंकि उधार धर्म स्वयं को समाधान मान लेता है, जो कि वह नहीं है। और ऐसी समस्या का कोई भी समाधान नहीं है, जो कि स्वयं को ही समाधान मानती है। ऐसी बीमारी का इलाज ही क्या हो सकता है जो कि स्वयं को स्वास्थ्य समझती है? लेकिन स्वयं धर्म निश्चय ही समाधान है। पर वह मिलता है समाधि से। समाधि के अतिरिक्त समाधान और कहीं से मिल भी कैसे सकता है? धर्म को खोजें अर्थात् समाधि को खोजें। शास्त्र से बचें, शब्द से बचें, विचार से बचें। निर्विचार ही द्वार है। शून्य में ही सत्य है। वही है धर्म। उसे जानकर फिर कुछ भी जानने को शेष नहीं रह जाता है और उसे जानते ही सब समस्यायें गिर जाती हैं, सब सवाल मिट जाते हैं।

प्रश्न—गृहस्थ के लिए ब्रह्मचर्य की क्या परिभाषा है।

ब्रह्मचर्य की परिभाषा तो एक ही है—ब्रह्म जैसी चर्याः। वह गृहस्थ या अगृहस्थ के लिए भिन्न-भिन्न नहीं हो सकती है। ब्रह्मचर्य अत्यंत विधायक, पॉजिटिव अवस्था है। वह निषेधात्मक, निगेटिव स्थिति नहीं है। लेकिन, सदा से ही उसे निषेधात्मक समझा जाता रहा है। इसीलिए व्यर्थ ही, बहुत-सी भ्रांतियां पैदा हो गई हैं। ब्रह्मचर्य से समझा जाता रहा है—काम-निरोध !

इसीलिए, आपके मन में गृहस्थ और अगृहस्थ के लिए ब्रह्मचर्य-भेद का भी सवाल उठा है। अगृही को तो हम पदेन ही ब्रह्मचारी मान लेते हैं, क्योंकि काम-तृप्ति का स्वाभाविक साधन उसके पास नहीं है। लेकिन, काम, सैक्स, अस्वाभाविक साधनों से भी तृप्त हो लेता है। और काम के लिए अन्य की उपस्थिति भी अनिवार्य नहीं है। काम आत्म-काम, ऑटो इरोटिक भी बन जाता है। फिर काम के लिए ऐच्छिक-तृप्ति भी अनिवार्य नहीं है। वह अनैच्छिक, नान-वालेन्टरी तृप्ति का मार्ग भी खोज लेता है जैसे, स्वप्नों में। इसलिए, काम-ऊर्जा, सैक्स एनर्जी के स्खलन के लिए।

गृही या अगृही में कोई भेद नहीं है। भेद है भी तो इतना ही कि गृही के विकृत परवर्टेड होने की संभावना अगृही से कम है। ब्रह्मचर्य की निषेध—दृष्टि ने ब्रह्मचर्य की परम पावन धारणा को किसी भी भांति 'वीर्य-रक्षण' की अत्यंत निम्न स्थिति प्रदान कर दी है।

ऐसे ब्रह्मचर्य भी अत्यंत कामुक, सैक्सुअल बनकर रह गया है। मैं ऐसी स्थिति के आमूल विरोध में हूं। मेरी दृष्टि में ब्रह्मचर्य काम-दमन, सैक्स सप्रेशन नहीं है। दमन से चित्त कभी-कभी काम का अतिक्रमण नहीं कर पाता है। दमन तो

एक दुष्ट-चक्र है, जिसे कि शुरू करना तो आसान है, लेकिन जिसके बाहर होना अति दुरूह है। क्योंकि, जिसे हम दबाते हैं, वह और भी गहरे अर्थों में हमारे चित्त का हिस्सा हो जाता है। दमन चेतन वृत्तियों को अचेतन बनाने की प्रक्रिया के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और इसलिए दमन-आधारित ब्रह्मचर्य, मानसिक व्यभिचार मात्र बनकर रह जाता है। दमन नहीं, चाहिए अतिक्रमण, ट्रांस्सेंडेंस। काम-ऊर्जा को दबाता नहीं है, वरन् उसे और नये आयामों में गतिमान करता है। काम-ऊर्जा अमूल्य संपदा है। उससे संघर्ष नहीं करना है। वरन् उसे सृजनात्मक क्रियेटिक बनाना है। संघर्ष से आत्म-विग्रह होता है। क्योंकि, हम और वह ऊर्जा दो नहीं हैं। वह ऊर्जा ही हम हैं। हम ही वह ऊर्जा हैं। काम भी राम है।

ध्यान के मार्ग से काम के राम होने का दर्शन उपलब्ध होना शुरू होता है। इसलिए, मेरे लिए प्राथमिक रूप से ब्रह्मचर्य ध्यान से प्रारम्भ होता है। ध्यान अर्थात् आत्म-रमण। स्वयं में होना। यौन अर्थात् पर-रमण। दूसरे में होना। फिर यह होना चाहे वास्तविक हो, चाहे काल्पनिक ! ध्यान का रस, पर-रमण से मुक्त करता है। आत्म-रमण का आनन्द, पर-रमण के आनन्द को एकदम फीका और अर्थहीन बना देता है। और इस भांति काम-ऊर्जा स्वयं के आयाम डायमेन्शन में प्रवाहित होने लगती है।

काम-ऊर्जा के प्रवाह की दो दिशायें हैं—यौन और योग। यौन बहिर्गामी है। योग अन्तर्गामी है। बहिर्गामी को दबाना नहीं है। अंतर्गामी को खोलना है। क्योंकि, बहिर्गामी को दबाने से अंतर्गामी नहीं खुलता है। विपरीत बहिर्गामी ही विकृत होकर प्रवाहित होने लगता है। लेकिन, अंतर्गामी के खुलने से बहिर्गामी अनायास ही तिरोहित हो जाता है। जीवन-

ऊर्जा के अंतर्गमन के इस अनुभव का नाम ही ब्रह्मचर्य है। निश्चय ही इस अंतर्यात्रा के साथ ही सारी चर्या बदल जाती है। वह अहं-केंद्रित न होकर ब्रह्म-केंद्रित हो जाती है। यौन, अहं-चर्य है। योग ब्रह्मचर्य है। यौन भी मिलन है—'पर' से। योग भी मिलन है—'स्व' से ; 'पर' माया है। 'स्व' ब्रह्म है।

बम्बई, पत्र-संग्रह १९६८-६९-७०

४. ध्यान : अनुभूति

प्रश्न—मैं साधना करती हूं, खासकर उसके बारे में मुझे पूछना है।

साधना करेगी तब तो पूछ ही न सकेगी। साधना इतनी और उतनी नहीं होती। मात्रा होती नहीं। यह हमारी बड़ी भ्रांति होती है। चूंकि हम चीजों की दुनिया से परिचित हैं, इसलिए हमेशा क्वांटिटी के हिसाब से सोचते हैं। चीजों की दुनिया से परिचित होने के कारण हमें भ्रांति होती है, क्योंकि चीजों में तो क्वांटिटी है और भीतर सिर्फ क्वालिटी है, क्वांटिटी नहीं है। भाव की दुनिया में कोई मात्रा नहीं है! इसलिए हम ऐसा नहीं कह सकते हैं कि हम किसी को कम प्रेम करते हैं। या तो करते हैं, या नहीं करते हैं। कम और ज्यादा प्रेम नहीं हो सकता। क्योंकि वहां नापने का उपाय भी नहीं है। या तो हम प्रेम करते हों, या हम नहीं करते हों। कम प्रेम धोखे की बात है। ऐसे ही या तो हम साधना में जाते हैं या नहीं जाते हैं। कम साधना धोखे की बात है। लेकिन चूंकि हम वस्तुओं की दुनिया में ही जाते हैं और हमारा सारा चिन्तन वहां से बनता है, तो वहां मात्राएं हैं। और उन्हीं मात्राओं को हम अध्यात्म में भी ले आते हैं, तब बड़ी भूल शुरू होती है।

इसी तरह हम सीढ़ियां ले आते हैं, अध्यात्म की दुनिया से। वहां सिर्फ छलांग, है वहां कोई सीढ़ियां नहीं है। लेकिन

अगर सीढ़ियां न हों तो गुरु और शिष्य का क्या हो। गुरु वह है जो आखिरी सीढ़ी पर खड़ा है, शिष्य वह है, जो पहली सीढ़ी पर खड़ा है। अध्यात्म की दुनिया में इसलिए शिष्य और गुरु नहीं हो सकते। वे सब हमारी वस्तुओं की दुनिया से ली गयी उधार बातें हैं जहां मजदूर है और मालिक है, जहां शिष्य है और गुरु है, कोई सिखाने वाला है, कोई सीखने वाला है। अध्यात्म की दुनिया में न कोई सिखाने वाला है, न कोई सीखने वाला है। सीखने की एक छलांग है। ए जम्प इन टु लर्निंग। प्रॉसेस नहीं है, लर्निंग वहां है; इसलिए क्रम नहीं है, ग्रेड नहीं है। लेकिन शोषण का क्या होगा? अगर ग्रेड न हो, तो शोषण करना बहुत मुश्किल है। इसलिए हम ग्रेड बनाते हैं। हम कहते हैं यह अभी नम्बर एक की सीढ़ी पर है, यह नम्बर दो की सीढ़ी पर है, मैं नम्बर पांच की सीढ़ी पर हूं।

मैं गया, मेरे साथ एक बहुत मजेदार मामला हुआ। एक संन्यासी हैं। बड़ा आश्रम है उनका और हजारों उनके शिष्य हैं। वे एक बड़े तख्त पर बैठे हैं। उनके बगल में एक छोटा-तख्त रखा हुआ है। उस पर एक दूसरे संन्यासी बैठे हुए हैं और बाकी संन्यासी नीचे बैठे हुए हैं। तो मैं गया तो उन्होंने कहा, आप जानते हैं, यह कौन बैठे हुए हैं? मैंने कहा, मैं नहीं जानता। उन्होंने कहा, ये चीफ जस्टिस थे हाईकोर्ट के। अब संन्यासी हो गये। लेकिन बड़े विनम्र हैं, कभी मेरे साथ तख्त पर नहीं बैठते। हमेशा छोटे तख्त पर नीचे बैठते हैं। मैंने कहा, ये तो विनम्र हैं, लेकिन आप कौन हैं कि आप हमेशा इनके साथ बड़े तख्त पर बैठते हैं। अगर ये विनम्र हैं तो आप कौन हैं? और मैंने कहा, ये भी छोटे तख्त पर बैठते हैं। इनसे भी नीचे लोग बैठे हुए हैं। ये भी नीचे उनके साथ ही बैठते हैं।

मैंने कहा ये आपके मरने की राह देख रहे हैं। जब आप यह तख्त खाली करोगे, तब ये ऊपर बैठ जायेंगे।

हायरेरकी चलेगी, चीफ डिसाइपल हैं ये आपको जब आप मरोगे तो ये गुरु हो जायेंगे। वह जो नीचे बैठते हैं, उनमें जो सबसे ज्यादा काम्पटिटिव होगा, एम्बीशस होगा, वह इस तख्त पर कब्जा कर लेगा। फिर यह गुरु उसके लिए कहेगा कि यह बहुत विनम्र है। विनम्र वह इसीलिए कह रहा है कि वह मेरे अहंकार की तृप्ति करवा रहा है, तो विनम्र है। अगर वह भी उचक कर इसी तख्त पर बैठ जाये, तब विनम्र नहीं रह जायेगा, क्योंकि मेरे अहंकार को चोट पहुंचनी शुरू होती है। तो मैंने कहा, आप यह क्यों बताते हैं कि यह आदमी हाईकोर्ट का चीफ जस्टिस है।

संन्यासी का मतलब ही है कि जो यह था अब नहीं है। यह कोई भी रहा हो, चमार रहा हो, हाईकोर्ट का जस्टिस रहा हो, न रहा हो, इससे कोई बात नहीं है, यह छलांग लगा गया है। अब यह बताने की क्या जरूरत है। यह भी आप नहीं बताते हैं कि यह कोई साधारण संन्यासी नहीं है—यानी यह चमार था, कोई पाप करता था, हाईकोर्ट का चीफ जस्टिस था। तब तो फिर यह छोड़कर कहीं गया नहीं है, फिर वही का वही है।

सारी दुनिया में अध्यात्म को जो नुकसान पहुंचा है, वह ग्रेडेशन से पहुंचा है, क्योंकि तब दुनिया में जो पद थे, सीढ़ियां थीं, पदवियां थीं, वह सब वहां पहुंच गयीं। नाम बदल गये, वहां सब पहुंच गयीं, वहां नये नाम से वे खड़ी हो गयीं। यहां नेता था और अनुयायी था, तो वहां गुरु और शिष्य हो गया। यहां मालिक था और मजदूर था, तो वहां सिखाने वाला और सीखने वाला हो गया। लेकिन जहां भी वर्ग है, वहां शोषण

है। वर्ग, अर्थात् शोषण। किसी भी भांति का वर्ग होगा, तो शोषण होगा, और जहां शोषण नहीं है वहां वर्ग को बनाने का उपाय नहीं है। उसको बनायेंगे कैसे?

तो मेरी अपनी समझ है कि शायद जमीन से और तरह के वर्ग मिटना तो बहुत असम्भव है, कम से कम अध्यात्म का वर्ग तो नहीं होना चाहिए। यानी वह एकमात्र पॉसिबिलिटी है, जहां हम वर्गविहीनता लायें। लेकिन वहां बहुत सख्त वर्ग है जितना कि धन की दुनिया में भी सख्त वर्ग नहीं है। वहां बहुत सख्त वर्ग है। हमारी एम्बीशन, हमारी ईगो, हमारा अहंकार, कितने तरह के रूप लेता है, इसको कहना बहुत कठिन है। और अहंकार जब भी कोई रूप लेता है तो उसके सोचने का ढंग सदा ही प्रॉसेस में होता है, क्योंकि अहंकार छलांग नहीं लगा सकता है, छलांग में वह मर जाता है। वह एक-एक कदम बढ़ता है। और एक-एक कदम वह इसलिए बढ़ता है कि जब वह एक कदम को मजबूत कर लेता है, तब पीछे का कदम छोड़ता है।

छलांग का मतलब यह है कि अगला कदम अनिश्चित है। पड़े न पड़े, गड्ढा हो, एबिस हो। छलांग का मतलब यह है कि अगला कदम निश्चित नहीं किया, और कूद गये हैं। बढ़ने का मतलब यह है कि अगला कदम ठीक से निश्चित कर लिया, पैर अच्छी तरह जमा लिया, तब पिछला कदम उठाया। यानी जब हम भविष्य को सुनिश्चित कर लेते हैं तो वर्तमान को छोड़ते हैं। यह तो क्रम से सोचने का ढंग है। छलांग से सोचने का ढंग यह है कि हम वर्तमान को तो छोड़ ही देते हैं और भविष्य को अनिश्चित रख लेते हैं। इतना अभय हो, तो ही अध्यात्म में गति है। उस भय के कारण अच्छा हो, और यह एक-एक कदम ही निश्चित हो

सकता है ज्यादा से ज्यादा, इसलिए आगे की सीढ़ियां जब हम पक्की मजबूत बना लेते हैं तब हम उसको चढ़ते हैं, पीछे की सीढ़ी छोड़ते हैं। यह छोड़ना नहीं है, यह सिर्फ बढ़ना है। इस सीढ़ी में पिछली सीढ़ी इम्पलाई है।

एक आदमी के पास दस हजार रुपये हैं, वह दस हजार छोड़ता है, पचास हजार पा लेता है। दस हजार वह छोड़ता नहीं है। इस पचास हजार में चालीस हजार—दस हजार जुड़ेंगे। वह सिर्फ चालीस हजार पाता है, दस हजार छोड़ता नहीं है। पिछली सीढ़ी हमेशा अगली सीढ़ी में समा लेता है। तो अहंकार जो है वह ऐसा चलता है जैसे सांप चलता है। आगे जब जाता है तो अपने पूरे शरीर को सिकोड़ कर आगे ले आता है। तो अहंकार इसलिए कभी कुछ नहीं छोड़ता। वह सारे पास्ट को सदा सिकोड़ कर आगे खींचता रहता है। इसलिए अहंकार बेसिकली कभी क्रांति से नहीं गुजरता, वह वहीं का वहीं रहता है, सिर्फ मोडीफाइड होता है। नयी-नयी सीढ़ियों से नये-नये रंग लेता चला जाता है। और हर नयी सीढ़ी पर अकड़ उसे नयी उपलब्ध हो जाती है, वह आनन्द से भर जाता है।

अध्यात्म की भी ऐसी अकड़ है, लेकिन ऐसा अध्यात्म, अध्यात्म ही नहीं होता। मेरी दृष्टि में अध्यात्म सदा ही एक छलांग है—जम्प है। जम्प, इन टु अन्नोन। और अन्नोन की हम ग्रेडेशंस नहीं कर सकते, नहीं तो, वह नोन हो जायेगा। अन्नोन को हम नक्शा नहीं बना सकते, नहीं तो, वह नोन हो जायेगा। अन्नोन में हम यह भी नहीं कह सकते कि कुछ मिलेगा कि खोयेगा। अगर इतना भी पक्का हो जाये, तो वह अन्नोन नहीं रह जाये। तो नोन अन्नोन में, ज्ञात से अज्ञात में जो छलांग है, वह हमारा यह जो चित्त,

क्वांटिटी, ग्रेडेशंस, ग्रेजुअलनेस, नियम, क्रम, इस भाषा में सोचता है कम और ज्यादा वह कभी नहीं बताता । उससे बहुत सावधान रहने की जरूरत है।

इसलिए जब तक हम नहीं हैं तब यह, यह जानना उचित है कि साधक नहीं है। कम साधक जानना खतरनाक है। नहीं है, मैं आपको प्रेम नहीं करता, यह जानना बहुत ही ठीक है कि मैं प्रेम नहीं करता। कम से कम यह सच तो है। और न प्रेम करने की भी अपनी पीड़ा है जो मुझे पकड़े है। जो मुझे काटेगी दिन-रात, कांटे की तरह चुभेगी कि मैं प्रेम नहीं करता। मैंने प्रेम किया ही नहीं। यह इतना घना होता जायेगा कि मुझे प्रेम की छलांग लेनी पड़ेगी। यह इतनी चुभन गहरी हो जायेगी कि जिस जमीन पर मैं खड़ा हूं, वह आग हो जायेगी। मुझे उसमें छलांग लगानी पड़ेगी, क्योंकि वहां खड़ा रहना असंभव हो जायेगा। लेकिन हमारा कनिंग है मन, वह कहता है कि नहीं, ऐसा नहीं है कि मैं प्रेम नहीं करता। थोड़ा करता हूं। थोड़ा और प्यार करूंगा, थोड़ा और ज्यादा करूंगा । इस भांति जमीन कभी इतनी गर्म नहीं हो पाती थोड़े कि वजह से कि मुझे ऐसा लगे कि छलांग लगाऊं । मैं कहता हूं कि थोड़ा तो करता ही हूं, थोड़ा और बढ़ा लूंगा, थोड़ा और बढ़ा लूंगा। इसलिए नहीं करने की पीड़ा कभी भी बहुत स्पष्ट नहीं हो पाती।

अब एक आदमी माला फेर रहा है तो वह कहता है कि थोड़ी साधना करते हैं। इस थोड़ी साधला करने में वह सदा अपने को साधना से बचा लेगा क्योंकि वह कहेगा कि ऐसा थोड़े ही है कि हम नहीं कह रहे हैं। थोड़ा हम कह रहे हैं । एक, मन्त्र जाप कर रहा है, वह कह रहा है, थोड़ा हम कर रहे हैं—ऐसा नहीं है कि हम खाली बैठे हैं, हम बेकार बैठे

हैं। जारी है। ऐसे वह अपने मन को समझा रहा है कि कुछ चल रहा है, कुछ चल रहा है, कुछ चल रहा है। ऐसे काम नहीं होगा, यह धोखा है, डिसेप्शन है, बहुत गहरे में।

प्रश्न—अस्पष्ट

दोनों बातें ठीक हैं, असल बात यह है कि मेमोरी, जिसे हम स्मृति कहते हैं न, स्मृति के मिटाने का सवाल नहीं है । स्मृति से जो हमारा आइडेन्टिफिकेशन है, उसे तोड़ने का सवाल है। मैं स्मृति ही नहीं हूं, यह जानने का सवाल है। यानी जो मैंने याद कर लिया, जान लिया, पहचान लिया, पढ़ लिया, सुन लिया, समझ लिया, वही मैं नहीं हूं। मैं उससे बहुत पृथक् हूं। और यह तो मेरा एक्यूम्युलेशन है। जैसे मैंने धन इकट्टा किया है, ऐसे मैंने ज्ञान भी इकट्ठा किया है। वह तिजोरी में बन्द है, वह स्मृति में बन्द है। यह भी एक तिजोरी है। लेकिन मैं तिजोरी ही नहीं हूं। धनपति भी इस भूल में पड़ जाता है, वह तिजोरी होती है और ज्ञानी भी इस भूल में पड़ जाता है, वह भी तिजोरी होता है। उसमें लगता है, यह भी मैं हूं। मेरा जानना ही मैं हूं। नहीं, मेरा जानना ही मैं नहीं हूं। जानना मेरे अस्तित्व की एक प्रक्रिया है। मैं बहुत ज्यादा हूं जानने से, और जो मैं जानता हूं उससे बहुत ज्यादा जानने की मेरी अनन्त सम्भावना है। तो स्मृति से तुम्हारी दूरी भर बढ़ेगी, स्मृति मिट नहीं जायेगी।

यह तुम्हारी टेक्निकल नॉलेज को कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है जम्प में, बल्कि, तुम्हारी टेक्निकल नॉलेज ज्यादा स्पष्ट हो जायेगी। क्योंकि जितने तुम अपनी स्मृति से दूर हो, उतनी क्लैरिटी हो। जितनी स्मृति के पास हो, उतनी क्लैरिटी कम है, धुंधली हो जाती है। और जब तुम स्मृति से आइडेंटिफाइड हो जाते हो, तब तो तुम बहुत दिक्कत में

पड़ जाते हो। स्मृति तो एक मैकेनिकल डिवाइस है, टेप-रेकॉर्डर की तरह। तुम टेपरेकार्डर नहीं हो।

लेकिन कोई आदमी टेपरेकॉर्डर को पास रखे रहे और समझ ले कि मैं टेपरेकॉर्डर हो गया, तो वह मुश्किल में पड़ जायेगा। कल टेपरेकॉर्डर टूट जाये, तो वह समझ लेगा कि मैं टूट गया, टेपरेकॉर्डर बन्द हो जाये, तो वह समझेगा कि मैं बन्द हो गया। और कल टेपरेकॉर्डर बन्द न हो, बोले ही चला जाये तो कहेगा, मैं क्या कर सकता हूं, मैं तो यही हूं। तो वह बहुत बुरी तरह का बन्धन है, न टेपरेकॉर्डर है—स्मृति भी टेपरेकॉर्डर है, जो बिल्कुल प्राकृतिक ढंग का है और आज नहीं कल, हम उसके साथ टेपरेकॉर्डर जैसा काम कर सकते हैं। करना शुरू कर दिया है। माइंड वॉश भी हो सकता है। यह कोई कठिनाई नहीं रह गयी है। तो यह जो स्मृति है, इससे तुम भिन्न हो। यह छलांग लगाते वक्त मिट नहीं जायेगी, सिर्फ छलांग में तुम्हारा फासला बढ़ेगा। तुम साफ देख सकोगे, यन्त्र क्या है और चेतना क्या है?

तो कॉन्शसनेस और मेमोरी तुम्हें साफ दिखायी पड़ने लग जायेगी। तब तुम्हारी कॉन्शसनेस में एक बर्जनेटी आयेगी, एक कुंआरापन आयेगा। जो कि स्मृति के द्वारा करप्ट नहीं किया गया है। असल में स्मृति जो है, बहुत करप्ट करती है। इसे समझ लेना उचित है। हमारी जो स्मृति है वह हमारे साथ व्यभिचार है। तुम कल मुझे मिले और कल तुमने मुझे गाली दी। आज जब सुबह तुम मुझे दिखते हो, तो मैं एकदम करप्ट हो जाता हूं। वह मेरी स्मृति कहती है कि वह आदमी आ रहा है, जिसने गाली दी। अब मैं तुम्हें देख ही नहीं पाता। वह कल का आदमी ही देखता रहता है कि वह आ रहा है जिसने गाली दी। अब मैं तैयार होता हूं

कि तुम गाली दोगे। मैं जबाब तैयार कर रहा हूं। कल जो जबाब मैं तैयार नहीं कर पाया था, क्योंकि तुमने अचानक जो गाली दी थी, आज बिल्कुल मैं तैयार हुआ हूं, तुम बोलो, मैं जबाब दूं।

और जब तुम मुझे गाली देने के लिए तैयार पाओगे तो बहुत सम्भावना है कि मैं तुममें से गाली भी पैदा करवा लूं, क्योंकि मैं सिचुएशन पूरी तैयार कर रहा हूं। और जब तुममें से गाली पदा हो जाये, तो मैं कहूंगा कि बिल्कुल पहले से तैयार था, वह ठीक ही किया। तो स्मृति ने करप्ट किया। वह अतीत से बांध दिया उसने। जैसे कल की धूल तुम्हारे घर में पड़ी हो और आज सुबह सफाई न हो पायी हो, ऐसा हो गया हो—और यह धूल अनन्त इकट्ठी हो जाये, इसलिए तुम कभी अन्करप्टेड वर्जित नहीं होते कि तुम सीधे कुंवारे ......कुंवारे की धारणा यही है—कुंवारे की धारणा यह है कि कुंवारेपन से ज्यादा पवित्र कुछ भी नहीं है।

लेकिन कुंवारेपन का जो हमने मतलब ले लिया है, बहुत अजीब ले लिया है। उससे कोई वास्ता नहीं है। कुंवारेपन का मतलब यह है कि जो कल ने फर्क नहीं किया है जिसे। जिसका अतीत, जिसके भविष्य को, वर्तमान को करप्ट नहीं करता है। जिसका अतीत बीच नहीं आता है, जो रोज ताजा खड़ा हो जाता है। अतीत एक कोने में स्मृति में होता है। लेकिन उसके ऊपर नहीं छाया होता है और वह रोज नये को देखने में सक्षम है। तो आज तुम आ रहे हो तो मैं तुम्हीं को देखूंगा, उसको नहीं जिसने कल मुझे गाली दी क्योंकि अब वह कहां है, गंगा का बहुत पानी बह गया। अब तुम पता नहीं, क्षमा मांगने आ रहे हो और मैं सोच रहा हूं, तुम वही आदमी हो, जो गाली दे गया है। पता नहीं चौबीस घण्टे में

तुम क्या हो गये हो, क्योंकि चौबीस घण्टे में अपना ही भरोसा नहीं कि क्या हो जायेंगे, दूसरे का क्या भरोसा ?

तो स्मृति जो है, वह करप्टेड एलिमेंट है। अगर तुमने अपने को उससे, आइडेंटिफाइड किया तो तुम मरे, वह आखिर में तुम पागल हो जाओगे। अगर उसके करेप्शन में पूरे पड़ गये तो पागल हो जाओगे। अगर उससे तुम पूरे बाहर हो गये हो और स्मृति तुम्हारा सिर्फ एक मेकेनिकल डिवाइस रही जो तुम्हें काम देती है कि मकान कहां है, दुकान कहां है जो पड़ा है वह कहां है, वह सिर्फ मैकेनिकल डिवाइस है, जिसका तुम उपयोग कर लोगे।

जैसे आज नहीं कल, छोटे कम्प्यूटर बना ही लिए, तो हम कम्प्यूटर जेब में डाल लेंगे। आदमी की स्मृति को थोड़ा उतना परेशान करने की जरूरत नहीं रहेगी कि तुम दस फोन नम्बर याद रखो। तो तुम अपने कम्प्यूटर में जैसा कि डायरी में तुम फीड कर देते हो कि-कि यह दूसरों के फोन नम्बर हैं, वह कम्प्यूटर में फीड कर दोगे कि मेरे हजार मित्रों के ये फोन नम्बर हैं। और फिर तुम पूछते हो कि राम का फोन नम्बर क्या है तो कम्प्यूटर तुमसे कह देता है कि इतना है। तो तुम्हें अपनी स्मृति में रखने की जरूरत नहीं रह जायेगी, तुम अपना कम्प्यूटर साथ रखोगे। और वह तुम्हारा काम कर देगा। अभी भी वह भी बहुत इनर मैकेनिज्म कम्प्यूटर का ही है, उसको भी हमें फीड करना पड़ता है। इसमें हमें कहना पड़ता है कि राम का फोन नम्बर यह है, राम का फोन नम्बर यह है। दस दफे कह लेते हैं वह फीड हो जाता है उसकी रेखा बन जाती है।

लेकिन यह तुम नहीं हो। तुम सदा इसके पार हो। तुम वह हो जिसने यह किया, तुम वह हो, जो याद करेगा, तुम वह

हो, जो भूल सकता है। वह कॉन्शसनेस अलग धारा है। तो जो छलांग लगेगी, उसमें यह चेतना तुम्हारी अलग साफ हो जायेगी। तब तुम वर्जिन हो जाओगे।

प्रश्न—अस्पष्ट

अगर तुम जो कह रहे हो, ठीक कह रहे हो—तुमने कुछ भी नहीं छोड़ा हुआ है। अब एक आदमी कह रहा है, मैंने अपनी स्मृति पूरी खो दी। वह पक्का सबूत दे रहा है कि उसने कुछ नहीं खोया हुआ है। उसको सब मालूम है कि क्या-क्या खो दिया है। अगर एक आदमी की स्मृति खो जाये, तो बताने वाला कौन आयेगा कहने कि भई, मेरी स्मृति खो गयी है।

प्रश्न—अस्पष्ट

मैं समझा तुम्हारी बात। परमात्मा को थोड़ी देर के लिए छोड़ो। छोड़ना इसलिए कि जिस परमात्मा को हम पकड़ और छोड़ सकते हैं वह परमात्मा नहीं हो सकता है। वह हमारी स्मृति ही है जो हमने किताबों में पढ़ी है, सीखी है, वह परमात्मा को हम पकड़े हुए हैं। वह भी झंझट डालेगा। वह भी करेप्ट करेगा तुमको। उसको छोड़ो। परमात्मा मैं उसी पवित्रता को कहता हूं जो उस इनोसेंस से आती है जो स्मृति के द्वारा चेतना को शुद्ध रखने का, मुक्त रखने का आधार है।

परमात्मा का मतलब यह है कि पवित्रतम है। परमात्मा का कोई व्यक्ति से मतलब नहीं है। परमात्मा मतलब है पवित्रतम। परमात्मा का मतलब ही है कि पवित्रतम है। परमात्मा पवित्र है, ऐसा नहीं। जो पवित्र है वह परमात्मा है। तो वह जो प्योरिटी है, वह स्मृति तुम्हारी रखने की जरूरत नहीं है, वही तो दिक्कत है। उसको छोड़ो। उसको याद रखने की जरूरत नहीं है। और अज्ञात में और गैर अज्ञात में और यह अलग और वह अलग, यह छोड़ो। इससे कोई लेना देना

नहीं है। आनन्द से जियो, शान्ति से जियो और अतीत तुम्हारे भविष्य को नष्ट न कर सके, उसके प्रति सचेत रहो, समझे न ! फिर पोस्ट टेलिग्राफ में, परमात्मा में बहुत फर्क नहीं है।

यह तो हम आग्रह ही न कि क्या-क्या हो। जो जैसा है, उसे स्वीकार करके हमें शान्त रहना चाहिए।

प्रश्न—अस्पष्ट

उसमें बाधा ला सकती है और साधक भी बन सकती है। यह आपके एटिट्यूड पर निर्भर है कि आप इसको कैसे लेते हैं। असल में इस जगत् में बाधक और साधक दो चीजें नहीं हैं। एक रास्ते पर एक पत्थर पड़ा है। वह बाधक भी हो सकता है, और सीढ़ियां भी बन सकता है। वह पार जाने से रोक भी सकता है और पार जाने के लिए सहारा भी बन सकता है। तो यह सवाल बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि क्या है बाधा और क्या है साधक। बड़ा सवाल यह है कि कैसे आप उसे लेते हैं। अब जैसे आपको भीतर एक आनन्दपूर्ण सुगन्ध आनी शुरू हुई है। यह सिर्फ एक तथ्य है कि आपने बाहर की सुगन्धें जानी थीं, आपने भीतर की भी एक सुगन्ध जान ली।

तो वह भी बाहर के ही अनन्त-अनन्त जन्मों का संचित इसेन्स है, वह भी। वह भी भीतर नहीं है। आपके भीतर प्रकाश जाना, वह भी बाहर के प्रकाश के अनंत-अनंत अनुभवों का संचित कोश है। जो भीतर बिल्कुल एटॉमिक फोर्स की तरह इकट्ठा हो गया है। वह प्रगट होगा तो सूरज फीका मालूम पड़ेगा। अगर आपके भीतर संगीत सुना तो वह भी अनंत-अनंत संगीत, अनंत-अनंत ध्वनियों का इकट्ठा सारभूत है। वह भीतर प्रगट होती है। इतना तो तय हुआ कि यह जब प्रगट होती है, तब आप बाहर से उस जगह गये जहां

बाहर के अनुभव संचित होते हैं। वह भीतर है लेकिन। तो आप इन्वर्ड गये, यह तो सबूत है इस बात का।

तो जब भीतर सुगन्ध आये, प्रकाश आये और भीतर और तरह के अनुभव हो जायें, तो यह इस बात का सबूत है कि आप भीतर गये। आपने स्थूल के जगत् से सूक्ष्म जगत् में प्रवेश किया। लेकिन अभी अन्नोन में नहीं गये आप। क्योंकि अन्नोन को तो रिकग्नाइज भी नहीं कर सकते आप। आप कह रहे हैं कि यह सुगन्ध है। यह नोन की दुनिया है, जो सुगन्ध आप जानते हैं, उससे इसका ताल मेल है। रिकग्नीशन सम्भव हो सका है। आप कहते हैं, यह सुगन्ध है, आप कहते हैं, यह प्रकाश है। तो जो प्रकाश आप जानते रहे थे बाहर, उस प्रकाश से इसका तालमेल है, नहीं तो आप इसको प्रकाश कैसे कहेंगे। तो यह अन्नोन नहीं है। है तो यह नोन ही। लेकिन जिसे बाहर जाना था, उसे अब आपने भीतर जाना है। जैसा हमने चांद को देखा था आकाश में, हमने झील की छाया में देखा चांद को। बस इतना ही फर्क है। भीतर आपको जो बाहर से छाया पड़ी है, रिफ्लैक्शन हुआ है, वहां आपने पकड़ा है इसको।

तो डायमेंशन तो बदला लेकिन स्थूल सूक्ष्म में हुआ। लेकिन सूक्ष्म भी स्थूल का ही रूप है। बहुत सूक्ष्म रूप है, लेकिन स्थूल का ही रूप है। इसलिए अगर बहुत ठीक से समझें, तो भीतर भी बाहर का ही मॉडीफिकेशन है। जिसको हम बाहर कहते हैं, वह दरवाजे के जो बाहर है, वह बाहर है, दरवाजे के भीतर है जो भीतर है। इसमें यह कहां अलग होते हैं कि जगह बाहर अलग होता है, भीतर अलग होता है। बाहर भीतर घुस जाता है, भीतर बाहर निकल जाता है। ये सब मिले जुले हैं। वही श्वास भीतर जाती है, तो आप कहते हैं

कि भीतर जा रही है और वही श्वास बाहर जाती है, तो आप कह रहे हैं बाहर जाती है। उसके आने जाने को आधे को बाहर कह देते हैं, आधे को भीतर कह देते हैं।

बाहर और भीतर एक ही चीज के हिस्से हैं। सूक्ष्म और स्थूल भी एक ही चीज के हिस्से हैं। और यह सब ज्ञात ही हैं। लेकिन बाहर के ज्ञात से छलांग लगाना मुश्किल है। भीतर के ज्ञात से छलांग लगाना अज्ञात में आसान है। बस इसी अर्थों में वह सूक्ष्म है। तो बाधा बन जायेगी अगर आप उसमें रसलीन हो गये और कहने लगे, पा लिया। अभी कुछ भी तो नहीं पाया, परफ्यूम ही पायी न। करोड़ों-करोड़ों गुनी अच्छी परफ्यूम पायी, जो बाजार में मिल सकती है, लेकिन है परफ्यूम ही न। और आज नहीं कल, वैज्ञानिक उसको भी बना लेंगे। ऐसी कोई कठिनाई नहीं है, परफ्यूम ही पायी न! आपने संगीत सुना भीतर, कुछ बीणा बजती सुनी, जैसी आपने कभी भी नहीं सुनी, कोई रविशंकर नहीं बजा सकते, ऐसी सुनी।

लेकिन जो सुनी जा सकती थी, वह कभी न कभी बजायी भी जा सकती थी, क्योंकि सुनना और बजाना एक ही प्रक्रिया के दो हिस्से हैं। तो जो पदार्थ आपने देखा है, वह कभी बाहर भी देखा जा सके, अगर विज्ञान इन्तजाम कर लेगा, तो हम आपको भीतरी प्रकाश भी दिखा दे सकते हैं। एल०एस०डी० और मैस्कलीन से वही सब प्रकाश और गर्मियां दिखायी पड़ रही हैं। वह वैज्ञानिक इन्तजाम है। इसको आध्यात्मिक उपलब्धि समझ लेने की भूल में पड़े, तो बाधा हो जायेगी। अगर समझा कि मिल गया अध्यात्म, हमको तो सुबह ही सुनायी पड़ने लगी, राग आने लगा, प्रकाश दिखायी पड़ने लगा, मिल गया—तो गये। यह जो पत्थर सीढ़ी बनता, वह अब दीवार

बन गया। अब आप अटक गये। अब आप बुरी तरह अटके।

क्योंकि स्थूल से तो आपके छुटकारे की आसानी थी क्योंकि इसमें धोखे में पड़ना बहुत मुश्किल था कि अज्ञात ही है, लेकिन इसमें धोखे में पड़ना आसान है। इसमें कलेक्टिव मामला था। उसमें और लोग भी थे जो कहते कि नहीं, कैसा अध्यात्म है, यह तो मकान है। कैसा अध्यातम, यह तो सितार की आवाज है। कैसा अध्यातम यह तो बिजली का प्रकाश है। कैसा अध्यातम यह तो फूल की सुगन्ध है। दूसरे लोग भी कहते हैं। अब आप बिल्कुल अकेले रह गये। अब दूसरा कोई नहीं रहा इसलिए अब अपने पर भरोसा कर लेना बहुत आसान है, खुद को धोखा देना बहुत आसान है। क्योंकि क्रिटिक कोई नहीं है, अब वहां। अब आप अकेले ही हैं। इस ध्वनि को आप ही सुनते हैं, कोई दूसरा सुनता ही नहीं है। यह प्रकाश तो आप ही देखते हैं, कोई दूसरा देखता ही नहीं। तो अपने आपको अब डिसइलूजन्ड कर लेना बहुत आसान है। अब आप कह सकते हैं, मिल गया। मिल गया कहा तो नुकसान हो जायेगा। जब तक मिल गया कहने की वृत्ति आये, तब तक खतरा है। नहीं कोई और छलांग लेनी पड़ेगी। अभी आप स्थूल से सूक्ष्म में आये, बाहर से भीतर आये, लेकिन अभी आप अज्ञात में नहीं चले गये।

जिस दिन अज्ञात आयेगा, उस दिन उसको रिकग्नाइज नहीं कर सकेंगे आप, क्योंकि अज्ञात को रिकग्नाइज कैसे करियेगा। आप न कह सकेंगे कि वह सुगन्ध है। न कह सकेंगे प्रकाश है, न कह सकेंगे परमातमा है, न कह सकेंगे आत्मा, न कह सकेंगे मोक्ष, न कह सकेंगे निर्वाण, कुछ न कह सकेंगे, बस इतना ही कह सकेंगे कि नहीं कह सकता हूं। उपाय नहीं है पहचानने का। आया है तो छुआ है कुछ, लेकिन शब्द देने के लिए कोई

उपाय नहीं है। इतना भी नहीं कह सकता कि मैंने पा लिया, क्योंकि मैं वहां नहीं टिकता हूं। तब तो अज्ञात में छलांग हो गयी, वह अतींद्रिय हो गयी, क्योंकि हमारा सब ज्ञात इंद्रियों का अनुभव है। वहां कुछ भी न रह जायेगा, न कोई वीणा बजेगी, न कोई सुगन्ध आयेगी, न कोई प्रकाश रह जायेगा। वहां कुछ भी न रह जायेगा, ऑब्जेक्ट ही रहेगा। यह हो रहा है। और जहां ऑब्जेक्ट नहीं रह जाता है, वहां सबजेक्ट भी खो जाता है, क्योंकि उसके बचने के लिए उपाय नहीं है। जब तक कोई चीज मुझे दिखायी पड़ती है तो मैं भी रहता हूं, जो मुझे दिखायी पड़ रही है। सुगन्ध, तो मैं भी मौजूद हूं। सुगन्ध है, मुझे आ रही है। प्रकाश है, मुझे दिखायी पड़ रहा है। जब तक ऑब्जेक्ट है कोई भी, तब तक मैं भी हूं।

जब ऑब्जेक्टलेस स्थिति होती है, तो मैं कहां टिकूंगा। सहारा कहां रहेगा कि मैं कहूं कि मैं भी हूं क्योंकि ऐसा मैं कहां टिकूंगा, जिसको सुगन्ध नहीं आती है, प्रकाश नहीं दिखायी पड़ता है और जिसे कुछ दर्शन नहीं होता है। और अनुभव नहीं होता है, कुछ नहीं होता इसलिए आध्यात्मिक अनुभव शब्द बिल्कुल ही गलत है। जब तक अनुभव है तब तक अध्यात्म नहीं है और जब अध्यात्म आता है तब अनुभव नहीं, क्योंकि अनुभव हमेशा ऑब्जेक्टिव है, वह सब्जेक्ट आब्जेक्टिव रिलेशनशिप है। इसलिए वहां वह यह भी नहीं कह सकेगा कि अनुभव हुआ है। उपनिषद् कहते हैं कि जो कहे कि मैंने जान लिया, जानना कि उसने नहीं जाना। यह गवाही हो जायेगी कि उसने अभी नहीं जाना।

प्रश्न—अस्पष्ट

बाधा भी डाल सकती है, साधक भी हो सकती है। असल में ऐसी कोई बाधा नहीं हो सकती, जो साधक न बन सके।

और ऐसा कोई साधन नहीं हो सकता, जो बाधा न बन सके। एटिट्यूड की बात है। वह बाधक नहीं बनेगी। अगर आप जानते हैं कि सुना है, पढ़ा है, लिखा है, इसलिए हो रहा है, तब तो बाधक नहीं बनती। हम प्रॉजेक्ट कर रहे हैं इसलिए हो रहा है, तब तो बाधक नहीं बनती। और अगर आपने कहा कि नहीं, सुना है, लिखा है, पढ़ा है, वह नहीं हो रहा है। यह तो अनुभव ही हो रहा है, तब तो बाधक बन सकती है। वह गहरे में एटिट्यूड की बात है। तो सदा इसमें सजग होने की जरूरत है। जो हो रहा है वह मेरे सुने, लिखे, पढ़े जाने हुए का संचित रूप तो नहीं है। वह ख्याल··· वह उतना ख्याल में बना रहे, तो एक दिन हो जायेगा वह जो सुना, लिखा, पढ़ा हुआ नहीं है। अभी तो सभी सुना, लिखा, पढ़ा हुआ है—सभी। नहीं तो, कोई उपाय नहीं है जब अनुभव नहीं हो उसका, तब तक सभी सुना, पढ़ा, लिखा है।

कठिनाई है। ऐसी कोई चीज नहीं है, जो दोनों एक साथ न हो सके। और तब अन्ततः चीज नहीं है महत्वपूर्ण, हमारा दृष्टिकोण है महत्वपूर्ण। तो मैं नहीं कहता हूं कि हर चीज को साधन बनाओ—हर चीज को साधन बनाओ। और हर चीज को बाधा समझ लो, तो कठिनाई में पड़ जायेंगे आप। यह भी उपाय है, हर चीज को बाधा ही समझ लो तो भी छलांग हो जाये। प्रत्येक चीज बाधा समझ में आ जाये कि सब चीज बाधा है। तो सब चीजें छोड़ दो, वह छूटता नहीं। निगेटिव मैथड तो यही है कि सब बाधा है, यह भी बाधा है, यह भी बाधा है, नेति-नेति, यह भी नहीं, यह भी नहीं। वह छूटता नहीं है। क्योंकि हम कहते हैं यह सीखा हुआ है, पढ़ा हुआ है, सुना हुआ है, छूटे कैसे।

तो फिर दूसरा रास्ता यह है कि प्रत्येक को साधन बना

लो कि हम इस पर भी पैर रखेंगे, इस पर भी पैर रखेंगे, लेकिन कहीं रुकेंगे नहीं, छलांग सबसे लगा लेंगे । दोनों उपाय हो सकते हैं । इसलिए दुनिया में दो ही साधना पथ हैं, एक पॉजिटिव, एक निगेटिव—दो ही साधना पथ हैं। एक जो प्रत्येक चीज को साधन बना लेगा और एक जो प्रत्येक चीज को बाधा समझ लेगा । दोनों से काम हो जायेगा, लेकिन दोनों टोटल हो जायेंगे । अगर प्रत्येक चीज बाधा है तो भी आप टोटल हो गये । मामला खत्म हो गया । अगर प्रत्येक चीज साधन है तो भी टोटल हो गया । या तो निगे-टिविटी में टोटल हो जायें कि कोई साधन ही नहीं है, तो भी छलांग लग जायेगी । और या पॉजिटिविटी में टोटल हो जायें कि सब चीज साधन है ।

अब जैसे तंत्र है, वह पॉजिटिव है । वह कहता है, सब चीज साधन है—गांजा भी, अफीम भी, स्त्री भी, भोग भी, सब चीज साधन है । वह कहता है बाधा कुछ है ही नहीं । इसलिए तन्त्र यह नहीं कहेगा कि यह बुरा है । वह कहता है, बुरा कुछ है ही नहीं । जो भी है सब साधन है । तंत्र को पचाना भी बहुत मुश्किल है, क्योंकि हम जानते हैं, कुछ तो बुरा है । कुछ अच्छा है । इसलिए हम टोटल नहीं हो पाते । वह तान्त्रिक भी टोटल हो जाता है । वह कहता है, सब—वह गांजा भी पीता है तो कहता है कि जय भोले । गांजा जो है, गांजे पर खड़े होकर, वह भोले में छलांग लगा जाता है । वह कहता है। जय भोले । अब गांजा और भोले का कोई लेना देना है । गांजा और भगवान के स्मरण का क्या सम्बन्ध है ? लेकिन वह कहता है, कि तेरी ही है यह चीज, हम इस पर भी राजी हैं । वह कहता है, हम इस पर भी राजी हैं । वह सब स्वीकार कर लेता है, अस्वीकार ही नहीं करता । और हर

चीज से कूदता चला जाता है ।

वह कहता है कि कुछ बाधा ही नहीं है, तो हम किस चीज से डरें । तन्त्र को डराया नहीं जा सकता । डराने का कोई उपाय नहीं है । आप जिससे डरायेंगे, उसी को पी जायेगा । इसलिए शंकर उसके केन्द्र पर आ गये हैं । वह जहर भी पी जायेंगे । वह भी साधन है । शंकर जैसा पॉजेटिव व्यक्तिगत नहीं हुआ है जगत् में, तो भी वह किसी चीज में बाधा ही नहीं देखते ।

दूसरा निगेटिव मेथड है । जैसे बुद्ध का शून्य है । या कृष्णमूर्ति की बात है । वह निगेटिव मेथड है । वह कहते हैं, सब बाधा है, सब छोड़ दो । कोई चीज साधना नहीं है—साधना है ही नहीं । इसलिए तुम साधना में उतरना ही मत । तो साधन पर जाना ही मत, सीढ़ी पर पैर ही मत रखना । पैर ही क्यों रखते हैं छलांग लगा लें । जब छलांग ही लगाने हैं, सीढ़ी से उतर ही जाना है, तो चढ़ते किसलिए हो । चढ़ो ही मत, तुम किसी सीढ़ी पर कभी जाओ ही मत । किसी विधि किसी मेथड को कभी पकड़ो ही मत, तो छलांग लगी ही हुई है । जब पकड़ोगे ही नहीं, सीढ़ी पर पैर ही नहीं रखोगे, चढ़ोगे ही नहीं तो कहा जाओगे ? तो तुम शून्य में चले जाओगे ।

ये दो ही हैं । और इन दोनों में बड़ा संघर्ष रहा है । वह संघर्ष नासमझी से भरा हुआ है । इन दोनों में भारी संघर्ष है । ये दोनों एक दूसरे के दुश्मन हैं—ये दोनों एक दूसरे के भारी दुश्मन हैं ! मेरी तकलीफ यह है, ये दोनों ठीक हैं। इसलिए मेरी बात आपके लिए कई दफे दिक्कत की हो जाती है । नहीं तो दोनों ठीक हैं। कभी मैं यह कह देता हूं कि यह रही विधि, और कभी मैं कह

देता हूं कि कोई विधि नहीं है । तो आपको कठिनाई हो जाती है कि यह मामला क्या है ? क्योंकि जब विधि नहीं है तो फिर हम ··· और मैं दोनों ही बात करता रहूंगा । क्योंकि मेरी समझ यह है कि आने वाले भविष्य में दोनों ही बातें—क्योंकि इन दोनों बातों के विरोधी होने से मनुष्य को बहुत नुकसान पहुंचाया है । क्योंकि कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि कौन आदमी किस मार्ग से चला जायेगा । इसलिए आग्रह खतरनाक होता है । और ये दोनों पंथ, जब पंथ बने, तो आग्रहपूर्ण हो गये—बहुत आग्रहपूर्ण हो गये ।

अब जैसे कृष्णमूर्ति हैं—अनाग्रह यह नहीं हैं, आग्रह भारी है । क्योंकि पॉजिटिव को बर्दाश्त ही न कर सकेंगे । यह मान ही न सकेंगे कि साधन भी हो सकता है । हो ही नहीं सकता है । निगेटिव के लिए आग्रह अति है । अब जैसे भक्त हैं—भक्त हैं, मीरा है, वह मान न सकेगी कि ऐसा भी हो सकता है कि साधन न हो, वह मान ही न सकेगी । वह कहेगी, सभी साधन हैं । असाधन तो हो ही नहीं सकता । और मेरी तकलीफ यह है कि मुझे दोनों ही ठीक है । लेकिन अगर मैं दोनों को एक साथ आपको ठीक कहूं तो आप कन्फ्यूज्ड भी हो जायेंगे । फिर तो आप बिल्कुल पागल हो जायेंगे ।

इसलिए मुझे ··· कभी मैं एक-सी बात करता हूं । मैं कहता हूं, जिसको निगेटिव पकड़ जायेगा, वह निगेटिव से ··· कभी पॉजिटिव की बात करता हूं, सोचता हूं, कभी किसी को पॉजिटिव पकड़ जायेगा तो ··· इसलिए मुझसे ज्यादा इन्कंसिस्टेंट आदमी खोजना बहुत मुश्किल है । कंसिस्टेंट मुझे होना हो, तो बिल्कुल हो सकता हूं । इसमें कोई कठिनाई नहीं है । एक को पकड़ लूं, तो कंसिस्टेंट हो जाऊंगा । लेकिन नहीं हो पाऊंगा । मैं दोनों की ही बात करूंगा । और फिर

यह भी पक्का नहीं है कि आपके लिए किस क्षण में कौन-सी चीज ठीक पड़ जाये, यह भी पक्का नहीं । ऐसा नहीं है कि एक आदमी को सदा ही निगेटिव ठीक पड़ता है ।

हो सकता है, कल उसको निगेटिव ठीक पड़ता हो और आज न पड़े क्योंकि निगेटिव की असफलता हो सके, उसके चित्त को पॉजिटिव की तरफ ले आये । पॉजिटिव की असफलता निगेटिव की तरफ ले जाये । यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता । इसलिए आग्रहपूर्ण मन्तव्य खतरनाक है । पर आग्रह से बचो तो इन्कंसिस्टेंसी अनिवार्य हो जाती है । असंगत वक्तव्य हो जायेंगे इसलिए मेरे प्रति निरन्तर लोग मुझे चिट्ठियां लिखते हैं कि आपने पहले यह कह दिया है, आप फलां किताब में यह कह दिये हैं, इस किताब में यह कह दिया है, इस शिविर में आपने यह कहा, इस शिविर में आपने वह कहा । वह नहीं समझ पा रहे कि उन्हें जो ठीक लगे, उससे वे चले जायें, मैं तो सब कहता रहूंगा । यह एक अर्थ में नया प्रयोग है—एक अर्थ में ।

और मैं यह मानता हूं कि असंगत होने से बड़ी और कोई हिम्मत नहीं है, क्योंकि बहुत झंझट का काम है न ! संगत होना बहुत सुविधापूर्ण है । एक पक्की राह है मेरी, पक्का हिसाब है । उतना कह देता हूं, बात खत्म हो गयी । दूसरा गलत है । उसको मैं काट ही देता हूं, उसकी तरफ फिर सवाल ही नहीं उठता । लेकिन मेरे लिए एक दूसरा, अगर मैं गलत भी कहता हूं तो सिर्फ इसीलिए कह रहा हूं कि यह रास्ता आप की समझ में आ जाये । लेकिन जब दूसरे को मैं ठीक कहूंगा तो इस रास्ते को इतना ही गलत कह दूंगा । असल में मेरे लिए गलत और सही नहीं है ।

दो रास्ते हैं, और दो तरह के लोग हैं और हर आदमी में

दोनों तरह के पहलू हैं। और जटिलता बहुत ज्यादा है। इसलिए पुरुष जो है—पुरुष चित्त, पुरुष नहीं—पुरुष चित्त, उसके लिए पॉजिटिव रास्ता आसान पड़ जाता है। एकदम आसान पड़ जाता है। पुरुष चित्त, क्योंकि वह एग्रेशन है, आक्रमण है। कुछ जीतने को चाहिए, कुछ पाने को चाहिए, कुछ पकड़ने को चाहिए ! स्त्री चित्त जो है, वह निगेटिविटी है, वह रिसेप्टीविटी है। कोई आये, वह आक्रमण नहीं है, प्रतिक्षा है। तो जिस सदी में पुरुष का बहुत प्रभाव होता है, जैसे पिछली सारी सदियां, जिसमें स्त्री का कोई प्रभाव नहीं था, पुरुष का प्रभाव था, वे सब साधन की सदियां हैं। आने वाले दिनों में स्त्री धीरे-धीरे प्रभावी हुई है और पश्चिम में जहां कि स्त्री बहुत प्रभावी हो गयी है, कृष्णमूर्ति जैसे विचार का प्रभाव पड़ सकता है। क्योंकि निगेटिविटी बढ़ी है। मगर यह इतना डोलता हुआ मामला है, रोज डोलता रहता है। जो ठीक लग जाये आपको, उसमें से कोई एक निर्णय प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर ले लेना चाहिए। अगर उसे लगता हो कि सब चीज बाधा मालूम पड़ती है, तो यह निर्णय भी बहुत अच्छा है।

प्रश्न—अस्पष्ट

प्रयोग से ही जान सकोगी। बुद्धि भागीदार होगी, प्रयोग में भी, लेकिन अकेली बुद्धि से न जान सकोगी क्योंकि तुम्हें कैसे पता चलेगा कि क्या तुम्हारे लिए है। अकेली बुद्धि से पता नहीं चलेगा क्योंकि बुद्धि अनुभव करने की क्षमता नहीं है। अनुभव की क्षमता तो टोटल पर्सनैलिटी में है। अनुभव पर बुद्धि विचार कर सकती है। अगर अनुभव हाथ में न हो तो बुद्धि कुछ भी नहीं कर पाती। तो इसलिए प्रयोग करो, देखो, प्रयोग के अनुसार जो आयें उन्हें बुद्धि के हाथ में दे

दो और उससे कहो कि सोचो। और ऐसा लगता है कि गति होती है साधन से तो चली जाओ साधन में, फिर पूरी चली जाओ। ऐसा लगता है कि नहीं होती है गति, तो असाधन में चली जाओ। और यह मेरी इच्छा है कि जो लोग गहरे में जायें किसी भी इस विधि में से, उसको मैं दूसरी विधि में भी बाद में ले जाना चाहूंगा, ताकि वह आग्रहपूर्ण न रह जाये। यह पुराना बहुत अतीत का दुखद अनुभव हुआ है कि जो जिस विधि से गया फिर उसने लौटकर कभी उससे विपरीत विधि का प्रयोग नहीं किया। करना बहुत कीमती है, क्योंकि तब आप में आग्रह रह ही नहीं जायेगा। क्योंकि आप कहेंगे, फिर कह सकेंगे, कि सब रास्ते पहुंचा देते हैं। और यह भी कह सकेंगे कि पहुंचने के लिए कोई रास्ता नहीं है। यह दोनों बातें कह सकेंगे।

●

बम्बई, दिनांक २४ सितम्बर १९७०

५. ध्यान : रेचन

प्रश्न—कई लोगों के मन में ऐसा ख्याल है कि तीन दिनों के शिविर से क्या हो सकता है। इन्सान के जीवन में इतनी आसानी से कैथार्सिस वगैरह हो जाती है और इसकी कोई आवश्यकता वगैरहे है कि ध्यान खुद ही अपने आप ही आ सकता है ? इसके बारे में कृपया बतायें।

ध्यान आ सकता है, स्वयं से भी आ सकता है, लेकिन पृथक्करण से नहीं आयेगा। बड़ा सवाल यह नहीं है कि हम अपने मन को एनोलाइज कर दें, क्योंकि यह पृथक्करण विश्लेषण करते वक्त कहीं हमारा मन ही तो नहीं है। और यह सारा पृथक्करण हमारे ही मन को दो खण्डों में तोड़ देता है। तो न तो पृथक्करण से सम्भव है कि मन एक हो जाये, न ही चिन्तन मनन से सम्भव है कि एक हो जाये। क्योंकि ये सारी क्रियाएं जिस मन से चलने वाली हैं, उसी मन को बदलना है। एक ही व्यवस्था से हो सकता है कि न तो हम पृथक्करण करें, न हम चिन्तन मनन करें वरन् मन के प्रति हम धीरे-धीरे जागरूक होते जायें।

जागरूक होने का अर्थ यह है कि हम कोई निर्णय नहीं लेते कि क्या भला है, क्या बुरा है।

हमें कोई पक्ष विपक्ष में, मन का ही हिस्सा बचाना है या अलग रखना है, ऐसी भी कोई धारणा नहीं है। जैसा भी मन है, बिना किसी भाव के, बिना किसी पूर्व धारणा के हम

इस मन के प्रति जागते चलें। अगर जागरण में थोड़ा सा भी पक्षपात हुआ मन में, तो मन खण्ड-खण्ड हो जायेगा। तब दो हिस्से हम तोड़ लेंगे, अच्छे और बुरे का हिस्सा हम अलग कर लेंगे। और जैसे ही मन टूट रहा है कि ध्यान असम्भव है। ध्यान का अर्थ ही है कि मन की समग्र अवस्था मिल जाये, टोटल अवस्था में ले जाये तो अगर हम बिना किसी पूर्व धारणा के, निर्णय के, अच्छे बुरे के ख्याल के, शुभ-अशुभ के, जैसा भी हो, इसके प्रति मेरे होने के दो ढंग हो सकते हैं। जैसा भी मैं हूं, इसके प्रति मैं सोया हुआ हो सकता हूं और जैसा भी हूं, हूं, उसके प्रति जागा हुआ भी हो सकता हूं। निर्णायक नहीं, कोई जजमेंट नहीं। जो भी मैं कल तक करता रहा हूं वह मैं सोते-सोते करता हूं।

आप पर क्रोध किया है तो बिल्कुल सीधे किया है। ऐसे ही हुआ कि जब हो चुका है तो मुझे पता चला है कि क्रोध हो गया। जब हो रहा था, तब पता ही नहीं चला। पृथक्करण वाला आदमी कहेगा क्रोध बुरा है, इसे मन से अलग कर लें। चिन्तन मनन वाला आदमी कहेगा कि क्रोध बुरा है। उसका वही पक्ष होगा। जागरण, अप्रमाद की जो व्यवस्था है, अवेयरनेस की जो व्यवस्था है वह इतना कहेगी, क्रोध हुआ है। और मैं दुखी क्रोध की वजह से नहीं हूं, दुखी मैं इस वजह से हूं कि मेरे सोते से हुआ है। तो मेरी लड़ाई क्रोध से नहीं है, मेरी लड़ाई इस सोयेपन से है।

अगर हम अपने सोयेपन से लड़ते चले जायें धीरे-धीरे हमारी प्रत्येक क्रिया हमारे होश में होने लगे तो बड़े मजे की बात है कि कुछ क्रियाएं होश में हो ही नहीं सकतीं। जैसे, क्रोध नहीं हो सकता, जैसे घृणा नहीं हो सकती, हिंसा नहीं हो सकती। तो मैं, मैं तो कहता ही ऐसा हूं कि जो जागरूक

अवस्था में हो सके, वही होने हैं, वही शुभ है। और जिसके होने के निद्रा अनिवार्य हो, वही पाप है, वही अशुभ है। यानी सोया हुआ होना, जिसके लिए अनिवार्य भूमिका बने, जिसके बिना हो ही न सके वही पाप है।

तो स्वयं ध्यान फलित हो सकता है, व्यवस्था जागने की करनी पड़ेगी। साधारणतः यह सम्भव नहीं हो पाती। क्योंकि हमारा वह जो सोया हुआ चित्त है वह इसका स्मरण नहीं रह पाता कि हम जागे रहें। वह इस बात के प्रति भी सो जाता है। कभी-कभी ख्याल आता है कि निर्णय किया था कि जागते रहेंगे, लेकिन यह निर्णय भी तो हम जागा हुआ नहीं किया है। यह निर्णय भी तो हमारी नींद का ही निर्णय है। इसलिए यह बात तो बिल्कुल ठीक लगती है, लेकिन हो नहीं पाती है। हो सकती है, वह सिर्फ सम्भावना है। और कभी लाख दो लाख आदमी में एक दो आदमी को हो भी जाती है। साधारणतः यह बात लगेगी बिल्कुल उचित, लेकिन हो नहीं पायेगी।

न होने में दो तीन कारण हैं—एक कारण तो यह होगा कि हमारा जो निर्णय है जागे होने का वह भी सोये हुए आदमी का निर्णय है। हम इसे भी तो चौबीस घण्टे याद नहीं रखने वाले हैं। यह भी तो हमें भूल जायेगा पांच क्षण के बाद। अब यह हमने निर्णय ले लिया है, निर्णय लेकर हम चुके भी नहीं हैं और घटना आ जायेगी और हम भूल जायेंगे कि हमने निर्णय लिया है।

एक तो कठिनाई यह है कि सोये हुए मन से लड़ना है, लेकिन सोया हुआ मन ही तो निर्णय लेगा। दूसरी कठिनाई यह है कि हमारे मन का जो अर्जित संस्कार है, वह जो कंडीशनिंग है, वह बाधा डालेगी। यानी वह ऐसे ही है जैसे हम एक

बीमार आदमी से कहें कि तुम स्वस्थ हो जाओ। राजी वह भी होगा। बीमार भी स्वस्थ होना ही चाहता है। वह भी कहेगा, बिल्कुल सहमत हैं आपसे। बात बिल्कुल ठीक है। लेकिन यह जो बीमारी के कीटाणु भरे पड़े हैं, यह जो बुखार चढ़ा हुआ है, इसका क्या करना है। स्वस्थ तो मुझे भी होना है। जब भी हम किसी आदमी से बात कर रहे हैं तो वह आदमी खाली नहीं है, वह आदमी भरा हुआ है।

इस जन्म के संस्कार हैं, और अगर हम और गहरे देखें तो और जन्मों के संस्कार हैं। वह सब भरे हुए हैं। वह बोझ उसके सिर पर है। यह जो बोध है, यह बाधा डालेगा, क्योंकि कल तक जो मैंने किया है, अनंत बार जिसे किया है, उसकी गहरी पकड़ और उसके सांचे बन गये हैं। उसके ग्रून्ज हैं। मुझे पता ही नहीं चलता है और वही हो जाता है। क्योंकि स्वभावतः मन का नियम है कि जहां लीस्ट रेसिस्टेंस है, मन वही करेगा। जीवन का ही नियम है। अगर मुझे यहां से दरवाजे तक पहुंचना है तो मैं सबसे कम दूरी चुनूंगा। स्वभावतः—सीधी से सीधी रेखा चुनूंगा। सीधी रेखा का मतलब यह है कि दो बिन्दुओं के बीच में निकटतम जो दूरी है, कम से कम जो दूरी है। उसको हम पागल कहेंगे जो पच्चीस चक्कर लगाकर उस जगह पहुंचे। और निकटतम और सरलतम वही है जो मैंने किया है। क्रोध मैंने किया है करोड़ों बार। अब क्रोध मैंने कभी किया नहीं। तो करोड़ों बार किये गये क्रोध की अपनी नहर बनी है। इधर उठी नहीं शक्ति कि उधर बही नहीं।

वह नहर बिल्कुल तैयार है, वह प्रतिक्षा कर रही है। दूसरी कोई नहर नहीं है। तो ऑल्टरनेटिव बहुत कम है। संभावना यही है कि जब क्रोध की स्थिति उत्पन्न हो, तब आप फिर क्रोध कर जायें। हालांकि फिर पछतायेंगे, यह पछताने का भी

ग्रूव है। यह हर बार क्रोध के बगल की चैनल है जो कि हर बार आपने क्रोध किया है और हर बार आप पछताये भी हैं। तो क्रोध का भी एक रास्ता बना हुआ है, फिर क्रोध के बाद पछताने का भी रास्ता बना हुआ है। वह इसी की छाया है। इसमें आप कोई नया काम नहीं कर रहे हैं। पहले भी क्रोध किया था, पहले भी पछताये थे। अब फिर क्रोध किया है, फिर पछताए। उसी के पास कसम खाने का रास्ता भी बना हुआ है और वह सब बने हुए रास्ते हैं। पहले भी कसम खा चुका कि क्रोध न करूंगा, अब फिर कसम खा लेंगे, क्रोध न करूंगा। लेकिन एक बात बिल्कुल ख्याल में न आयेगी कि वही हो रहा है, जो हो चुका है बहुत बार। और जितनी बार दोहरता जायेगा उतना मजबूत होता चला जा रहा है एक।

तीसरी बात, जो कुछ भी हमने किया है उसे भी कभी पूरा नहीं किया है। क्रोध भी हमने कभी पूरा नहीं किया। घृणा भी हमने कभी पूरी नहीं की, दुश्मन भी हम कभी पूरे नहीं हुए। किसी को मार डालना जरूर चाहा है, मार ही नहीं डाला। खुद भी आत्महत्या करनी चाही, लेकिन करी नहीं है। तो जो भी हमने करना चाहा है, उसका एक हिस्सा हमने दबाया भी है। वह हमारा सप्रेशन का बोझ है। वह प्रतिक्षा कर रहा है हर वक्त। वह हमेशा बल देता है उसी को करने को जो आपने रोक लिया है। तो इधर नहर खुदी है, इधर पीछे से फोर्सेस इकट्ठी हैं, बड़ी शक्तियां इकट्ठी हैं जो कहती हैं कि बस करो क्रोध, क्योंकि वहां भरा हुआ बोझ, वह निकलना चाहता है। ये तीन चीजें आपके, सब निर्णय आपके तोड़ देंगी। यहां निकास मिल पायेगा।

इन तीनों से निपटने के लिए जो मैं ध्यान कह रहा हूं, वह है कैथार्सिस। इसलिए कैथार्सिस उसमें मेरा पहला हिस्सा है।

कैथार्सिस में दो बातें हैं। एक तो जो मुझमें भरा है। पुराना दबाया हुआ है, उसको मुक्त करना है, उसको रेचन करना है। अब यह जो पुराना दबाया हुआ है, अगर किसी के ऊपर इसका रेचन किया जाये, तो फिर उपद्रव शुरू हो जायेंगे। अगर मेरे भीतर दबाये हुए क्रोध की एक मात्रा है, वह अगर मैं आपसे निकालूं तो आप बैठे तो नहीं रहेंगे। आप भी जवाब देंगे। आप भी मेरे जैसे आदमी हैं। आप भी लकड़ी लेकर खड़े हो जायेंगे। तो मैं जितना निकालूंगा, उतना फिर उससे दुगना आप पैदा करवा देंगे। फिर उसे दबाना पड़ेगा, क्योंकि सिलसिला कहीं तो तोड़ना पड़ेगा। फिर दबा लूंगा। तो किसी पर निकालने से तो रेचन कभी नहीं हो सकता है। किसी पर तो हम निकालते ही रहे हैं और रेचन नहीं हुआ है।

इसलिए कैथार्सिस इन वैक्यूम है, कैथार्सिस अन्डायरेक्टेड है। इसकी जरूरत है कि, मैं निकालूंगा क्रोध, लेकिन किसी पर नहीं, हवा में निकालूंगा। खालीपन में निकालूंगा, जिसमें की लौटती प्रतिक्रिया न हो उसकी। तो जो लौटती प्रतिक्रिया अगर न हो तो मैं नया अर्जन न करूं। और एक दूसरी घटना घटेगी, अगर हवा में मेरा क्रोध निकल जाये, जो कि साधारणतः आपको पागलपन मालूम पड़ेगी, इसलिए मास मेडिटेशन पर मेरा जोर है शुरू में। अकेले में आप बिल्कुल पागल मालूम पड़ेंगे। अकेले में आपको लगेगा, मैं यह क्या कर रहा हूं। और बड़े मजे की बात है कि अगर दो सौ लोग वही कर रहे हैं, तो फिर आप पागल नहीं मालूम पड़ेंगे, क्योंकि आपको लग रहा है कि मैं ही नहीं कर रहा हूं, ये एक सौ निन्यानबे लोग और कर रहे हैं। असल में हमारे पागल और न पागल होने का जो निर्णय है, वह भी समूह से दिया हुआ निर्णय ही है। किसी मुल्क में अगर मिलकर दो आदमी नाक रगड़कर

नमस्कार करते हैं, तो वह पागलपन नहीं है, क्योंकि पूरा मुल्क करता है। आज बंबई में जाकर किसी को नमस्कार नाक रगड़कर करें तो पागल हैं। वह भी आदमी चौंकेगा, आसपास के लोग भी चौंक जायेंगे, लेकिन फर्क क्या है। फर्क सिर्फ इतना है कि हम यहां अकेले पड़ गये हैं और वहां पूरी भीड़ वही कर रही है। अफ्रीकन औरत हैं, वह सिर घुटाकर सुन्दर हो जाती हैं, क्योंकि बाकी सारी औरतें भी सिर घुटाकर सुन्दर होती हैं। हिन्दुस्तान में कोई औरत सिर घुटाने को राजी नहीं होगी, वे कहेंगी मुझे कोई कुरूप बनाना है, मुझे कोई भूत-प्रेत बनाना है। अफ्रीकन औरत क्यों कर पा रही है? बाकी सारी भीड़ वही कर रही है। असल में हमारे पागल और गैर-पागल होने का पता ही हमें सिर्फ इसलिए चलता है कि हम अकेले तो नहीं पड़ गये।

तो इसलिए मेरा जोर है कि यह जो कैथार्सिस है, आप अकेले में उसे नहीं कर पायेंगे। कर सकें तो अच्छा है, मुझे कोई एतराज नहीं है कि अकेले में कोई कर सके, लेकिन कर नहीं पायेगा अकेले में उसे खुद ही लगेगा कि मैं घूंसा किसको मार रहा हूं, क्योंकि हमारी सदा की आदत जो है, वह किसी को घूंसा मारने की है। हवा में घूंसा मारने की, हवा में घूंसा मारने से हम पागल मालूम पड़ेंगे कि यह क्या पागलपन कर रहे हैं। हवा में घूंसा हमने सिर्फ पागलों को मारते देखा है। हवा में चिल्लाते सिर्फ पागलों को देखा है। नहीं कोई मौजूद है, बोलते सिर्फ पागलों को देखा है। हम तो सब समझदार कोई हो, तो बोलते हैं। कोई हो तो घूंसा मारते हैं, कोई हो, तो क्षमा मांगते हैं, कोई हो तो चिल्लाते हैं, कोई कारण हो, तो हम बोलते हैं, कोई कारण हो तो हम हंसते हैं।

अकारण तो हम कुछ भी नहीं करते। अगर ठीक से समझें,

तो अकारण करने वाले आदमी को हम पागल कहते हैं। इसलिए एक आदमी बैठा है यहां, अचानक यहां हंसने लगे, खिलखिलाकर, तो हम कहेंगे पागल है, क्योंकि हमने कोई बात भी न की थी। अभी तो कोई चर्चा न थी। चर्चा हो, खूंटी हो टांगने को तो फिर हंसे, तो हम कहेंगे चलेगा। तो इसलिए कैथार्सिस जो है, वह मेरी दृष्टि में मास ही शुरू की जा सकती है। इतने हिम्मत के बहुत कम लोग हैं कि वे अकेले में कैथार्सिस कर सकें, और अकेले में किसी न किसी तरह का रेसिस्टेंस बना ही रहेगा। अकेले में तो क्योंकि अकेले ही आप और आपको पूरे वक्त यह ख्याल बना ही रहेगा कि जो मैं कर रहा हूं, यह क्या कर रहा हूं, कोई पागलपन तो नहीं कर रहा हूं।

लेकिन दो हजार आदमी कर रहे हैं, दस हजार आदमी कर रहे हैं, इसलिए मेरा इरादा ही यह है कि इसको जितने बड़े व्यापक पैमाने पर किया जाये, दस हजार आदमी करेंगे, आप और भी ज्यादा आसान अनुभव करेंगे। तब आपको पागल होने का डर न रहा। दस हजार आदमी पागल नहीं हैं और आप वह सब चेहरे देख रहे हैं जो पागल नहीं हैं। आपको अपने चेहरे पर शक हो सकता है। सब आदमियों को शक होता है अपने पर कि वे कभी पागल हो सकते हैं। क्योंकि भीतर जो वे चलते देखते हैं, वह है भी पागल होने के निकट। वहां सदा ही कहना चाहिए बालकैनों पर ही हम बैठे हुए हैं। लेकिन जब आप देखते हैं कि मजिस्ट्रेट गांव का भी कर रहा है और वकील भी कर रहा है और डाक्टर भी कर रहा है और प्रोफेसर भी कर रहा है और वृद्ध भी कर रहा है, जवान भी कर रहा है, यह आपके ख्याल से तत्काल बात उतर जाती है कि कोई पागलपन हो रहा है। यह उतर

जाना बहुत जरूरी है, नहीं तो कैथार्सिस न हो पायेगी। इसलिए कैथार्सिस मास ही हो सकती है।

अभी पश्चिम में ग्रुप थैरेपी पर बहुत जोर बढ़ा है। मैं मानता हूं कि वह जोर उचित है। एक आदमी को अकेले में उसके मस्तिष्क को ठीक करना कठिन पाने लगे हैं वे भी। लेकिन एक ग्रुप में उसे ठीक करना ज्यादा आसान हो जाता है। क्योंकि ग्रुप में वह ऐट इज हो जाता है। तो यह थोड़ा ख्याल में ले लेने जैसा है कि एक आदमी अकेले में स्वस्थ है, साधारणतः जिसको हम नॉर्मल आदमी कहते हैं, उसे भी अकेले में हम दो चार साल एक कमरे में डाल दें, तो वह पागल हो जायेगा। यह वही आदमी है, अकेला क्या करेगा। अकेला इसको पागल नहीं बना सकता अकेलापन, लेकिन यह पागल क्यों हो जा रहा है? असल में यह वे ही काम इस अकेलेपन में करना शुरू करेगा, जो इसने किसी के साथ किये थे। लेकिन तब वजह थी इसके पास, अब बेवजह हो जायेगा मामला। तब यह क्रोधित हुआ था, इसने कहा था कि क्रोध का कारण है, क्योंकि लड़के ने गलती की है।

अब भी क्रोध आयेगा, क्योंकि क्रोध बाहर से बंधी हुई चीज नहीं है, वह हमारी भीतरी अवस्थाओं से है। अब भी क्रोध आयेगा। अब कोई लड़का नहीं है, कोई पत्नी नहीं है, दीवारें हैं अब किसको क्रोध करेगा? कुछ दिन रोकेगा, दबायेगा, फिर वश के बाहर हो जायेगी। फिर यह दीवार को गालियां देने लगेगा। दीवारों को जिस दिन इसने गाली दी, यह भी जानेगा, मैं पागल हो गया हूं, बाहर के लोग भी जान रहे हैं कि यह आदमी पागल हो गया है, क्योंकि अब यह अकारण काम कर रहा है।

कैथार्सिस का मतलब है, जो हमने सदा आब्जेक्टिव के

साथ क्रिया है, कॉंजल था, अब उसे हम अन्कॉंजल कर रहे हैं, अन्डायरेक्टिड। तो इसके लिए बड़ा ग्रुप हो, तो आसान हो जायेगा, एक।

दूसरी बात कि अगर यह हमने अकारण किया, तो जो क्रोध सदा कारण से चलता था, वह बंधी हुई नहर से बहता था। बंधी हुई नहर सदा डायरेक्शन में होती है। अब यह अकारण नहीं है, ओवर-फ्लो होगा। अन्डायरेक्टेड होने की वजह से इसकी कोई चैनेलाइजेशन नहीं होगा। क्योंकि आप पर अगर मुझे क्रोध करना था, तो आपके और मेरे बीच एक रास्ता बनता है क्रोध का, लेकिन हमें किसी पर क्रोध नहीं करना है इसलिए डायमेंशनलेस होगा, और कैथार्सिस जो है वह डायमेंशनलेस ही हो सकती है। अगर इसमें डायमेंशन है तो फिर कैथार्सिस नहीं हो सकती। यह ओवर-फ्लो होगा। यह पूर की तरह होगा, बाढ़ की तरह होगा जो किनारे तोड़ देगा। किनारे टूट जाने जरूरी हैं तभी आप पूरे खाली हो सकते हैं, एक। क्योंकि इतना क्रोध है जन्मों-जन्मों का, इतनी वासना है, इतना काम है, वह सब है इकट्ठा। वह पूरा कर देना चाहिए।

दूसरा, जब यह बांध तोड़ कर बहता है तो फिर इसके कोई रास्ते नहीं बनते। जब यह बह जाता है तो जगह खाली छूट जाती है, इसके पीछे जगह खाली हो जाती है और बंधे रास्ते नहीं रह जाते हैं। और एक दफे आपने क्रोध को अगर अकारण बहते देखा, एक बार भी अनुभव कर लिया अकारण तो अब आप कारण न खोजेंगे कभी क्रोध के लिए। और एक बार आपने उसको सारे रास्ते तोड़कर बहते देख लिया, तो वह जो पुराने बंधे हुए रास्ते थे, वह नष्ट हो गये, वह टूट गये। पुराने घाट टूट गये, पुराना पश्चात्ताप टूट गया,

प्रायश्चित टूट गया, वह गया सब। यह मन खाली हो जाये आदत से और दमन से—दोनों से खाली हो जाये, तो फिर जिसको मैं जागरूकता कह रहा हूं, वह सरल बहना हो जायेगी।

अब लोगों को लगता है सदा ऐसा कि तीन दिनों में कैसे हो जायेगा? समय के बाबत भी हमारी बड़ी अजीब धारणाएं हैं। असल में हमें यह ख्याल नहीं है कि कोई भी टेकनीक कम विकसित हो, तो ज्यादा समय लेता है। ज्यादा विकसित हो, तो कम समय लेता है। बैलगाड़ी में चलता था जो आदमी उसकी कल्पना में नहीं हो सकता था कि घण्टे भर में दिल्ली पहुंच जायेगा उसका, घण्टे भर में दिल्ली पहुंचने की कोई आन्तरिक कठिनाई नहीं है। बैलगाड़ी के टेकनीक की तकलीफ है उसके दिमाग में। उसका जो टाइम स्केल है वह बैलगाड़ी का है। वह अनुभव से कह रहा है कि यह हो ही नहीं सकता है कि घण्टे भर में दिल्ली आप पहुंच जायेंगे, और यह तो हो ही नहीं सकता कि चांद पर आप पहुंच जायेंगे क्योंकि बैलगाड़ी को चांद पर ले कैसे जाइएगा। आज से दो सौ साल पहले सिर्फ बच्चों की कहानियां थीं—कहानियां लिख सकते थे चांद पर पहुंचने की। सिर्फ बच्चे ही यह बकवास कर सकते थे चांद पर पहुंचने की। कोई बुद्धिमान आदमी, कोई प्रौढ़ आदमी यह बात नहीं करता कि यह क्या बचकानी बातें कर रहे हो? क्योंकि हमारे पास जो साधन थे यात्रा के, उनसे कोई सम्बन्ध ही नहीं जुड़ता था।

ठीक वैसे ही ध्यान की जो स्थिति है वह करीब-करीब वहीं ठहर गयी है, जहां बैलगाड़ी ठहरी थी। यानी जिस वक्त बैलगाड़ी हमारा आम वाहन थी और घोड़ा हमारा तेज से तेज वाहन था, उस जमाने में ध्यान ने जो टेकनीक विकसित

किये थे, वे वहीं ठहर गये। उनमें कोई विकास नहीं हुआ। बैलगाड़ी तो हवाई जहाज बन गयी, लेकिन ध्यान वहीं ठहरा हुआ है! अब भी जब हम ध्यान को खोजने जाते हैं तो हम स्वभावतः महावीर में खोजेंगे, पतंजलि में खोजेंगे, लेकिन हमको पता नहीं, पतंजलि बैलगाड़ी में चलता था और पतंजलि का टाइम स्केल है, वह बैलगाड़ी का टाइम स्केल है। और अगर बैलगाड़ी की दुनियां में विकसित की गयी ध्यान की पद्धतियों की चर्चा आप जेट की दुनिया में करेंगे तो आप अपने हाथ से ध्यान को हरवाने जा रहे हैं। तो उस जमाने में बिल्कुल सहज थी यह बात कि ध्यान एक जन्म में उपलब्ध नहीं होता, तीन दिन तो बहुत थोड़े हैं, एक जन्म भी छोटा था। ध्यान एक जन्म में उपलब्ध होता नहीं, जन्मों-जन्मों की बात है।

जिस समय की गति पर हम जी रहे थे, वहां यह बात मौजूद थी। लगती थी कि ठीक है, ऐसा ही होगा। और कोई उपाय भी नहीं था इसको समझने का। जिन्होंने पाया था वे भी कहते थे कि जन्मों-जन्मों की यात्रा है। वे भी गलत न कहते थे, अनुभव से ही कहते थे। लेकिन इसमें कारण कोई ध्यान की, कोई इनटेंसिक टेकनीक है। समय से कोई लेना-देना नहीं है ध्यान को। न गति से समय को कुछ लेना-देना है। समय और गति के बीच में टेकनीक निर्धारित होता है कि क्या होगा। अगर हम आयुर्वेद की दवा आपको देते हैं तो उसका समय होगा। वह असल में बैलगाड़ी के वक्त में विकसित हुई थी। एलोपैथी का इंजेक्शन भी उतना समय नहीं लेगा। वह बैलगाड़ी के जमाने का विकास नहीं है।

मेरी अपनी समझ यह है कि इस जगत् में जब भी एक

स्तर पर गति बढ़ती है तो सारे स्तर के गतियों को बढ़ना चाहिए, अन्यथा वह असंगत हो जाती हैं व्यवस्थाएं। अब जैसे कि पश्चिम में फ्रायड ने जो मनोविश्लेषण विकसित किया था, पचास-साठ साल पहले, वह हारने लगा, क्योंकि उसका टाइम स्केल बहुत लम्बा है। अगर फ्रायडियन एनालिसिस करवानी हैं तो तीन साल भी लग सकते हैं, दस साल भी लग सकते हैं। तो तीन साल तो लगने ही वाले हैं। तो गरीब आदमी तो करवा ही नहीं सकता। और दो तीन साल जो अफर्ट कर सके, निरन्तर हर सप्ताह कम से कम तीन सिटिंग दे सकते हैं और खर्चीला है। तो फ्रायड अब चल नहीं सकता आगे। क्योंकि उसका जो ढंग है, बिल्कुल बैलगाड़ी वाला है। तीन साल में अगर एक मानसिक आदमी का थोड़ा-सा तकलीफ है, उसको तीन साल लगे इलाज में, तो बीमारी तो एक तरफ रही, इलाज बड़ी बीमारी हो गयी। यह इलाज नहीं लागू किया जा सकता। कितने लोगों के पास इतना समय है, कितने लोगों के पास इतना पैसा है, जो तीन साल छोटी मोटी मानसिक बीमारी के लिए व्यवस्था दे। यह नहीं चल सकता है।

तो निरन्तर इधर पिछले पन्द्रह वर्षों में मनस्शास्त्री को तीव्र गतियां खोजनी पड़ी हैं कि कैसे जल्दी हो सके। जो आदमी एक-एक मिनट बचा रहा है, जो एक-एक मिनट बचाने के लिए जीवन दांव पर लगाये हुए है, उस आदमी से आप कह रहे हैं कि तीन साल तुम्हारा मानसिक विश्लेषण करने में लाग।येंगे, तो वह कहेगा कि वह अगले जन्म में मिलेगा। लेकिन तीन साल फिर भी समझ में आ रहा है। हम इस मुल्क में ध्यान के लिए जो भाषा बोलते हैं, वह जन्मों की बोलते हैं!

मेरा अपना मानना है कि यह कोई सवाल नहीं है। यह

सिर्फ टेकनीक अविकसित है। जिस टेकनीक की मैं बात कर रहा हूं, इसको अगर चौबीस घण्टे किया जाये, तीन दिन, तो तीन दिन बहुत है। चौबीस घण्टे अगर इसको तीन दिन किया जाये, तो तीन दिन थोड़े नहीं हैं, थोड़े जरूरत से ज्यादा हैं और आपको भारी पड़ सकते हैं। क्योंकि कैथार्सिस है एक तो यह। यह कैथार्सिस साधारण घटना नहीं है। अगर इसे बहुत लम्बे अर्से पर निकाला जाये। अगर इस-में हम तीन दिन की जगह तीन साल लगायें, तो इतना थोड़ी-थोड़ी मात्रा आपसे निकलेगी कि उतनी मात्रा आप रोज पैदा कर लेंगे। इसको लम्बाया नहीं जा सकता।

समझ लें कि इस घर को हम इतने झाड़ें, इतने आहिस्ते झाड़ें कि झाड़ने में चौबीस घण्टे लग जायें, तो जब दूसरे दिन हम झाड़कर चुकें, तब तक पायें कि कचरा घर में आ गया। इसलिए चौबीस घण्टे में कचरा तो आने वाला है। तो इस घर को अगर झाड़ने में चौबीस घण्टे लगें तो झाड़ना बिल्कुल बेकार है। झाड़ना ही नहीं चाहिए, बिल्कुल अर्थ ही नहीं है, क्योंकि जब तक आप झाड़ पायेंगे, तब तक कचरा वापस जगह आ गया होगा। और यह घर कभी भी स्वच्छ हालत में दिखायी नहीं पड़ सकता। तो कैथार्सिस का तो कोई भी प्रयोग इंटेंस होना चाहिए, पहली बात। यानी इसके पहले कि नया कचरा इकट्ठा हो आपमें खालीपन चाहिए, नहीं तो दिखायी नहीं पड़ेगा। अगर हम बहुत धीमी मात्रा के डोज दें, होम्योपैथी के डोज हों तो नहीं चलेगा। क्योंकि वह इतने आहिस्ता चलने वाला काम है और आपकी बीमारियां इतनी हैं कि जितना हम निकाल पायेंगे, उससे ज्यादा तो आप कल इकट्ठा करके हाजिर हो जायेंगे। उतने धीमे कैथार्सिस नहीं हो सकते।

दूसरी बात। बहुत तेज भी नहीं की जा सकती । क्योंकि आपकी बीमारियां ही आपका व्यक्तित्व हैं । अगर उनको एकदम से निकाल दिया जाये तो तो आप एकदम ही घबरा सकते हैं । तो ये तीन दिन से कम में भी हो सकता है। मेरे हिसाब में तो यह चौबीस घण्टे में भी हो सकता है, आठ घण्टे में भी हो सकता है। लेकिन आठ घण्टे में इतनी तीव्र प्रतिक्रिया होगी और गैप इतना बड़ा होगा कि आप फिर अपने को पहचान नहीं सकेंगे कि आठ घण्टे पहले जो आप थे, वही आप हैं। आपकी जो पर्सनल आइडेंटिटी है, उसके टूट जाने का डर है। तो सफाई इतनी देरी भी नहीं होनी चाहिए कि कचरा इकट्ठा हो जाये, इतनी तेज भी नहीं होनी चाहिए कि मकान साफ हो जाये। इतनी तेज भी हो सकती है। गुल-रोगन लगाकर सफाई की तो फिर गया मामला। फिर आप जब सफा मकान देखने आयेंगे तो पायेंगे, मकान साफ, वहां कुछ बचा ही नहीं है। कचरा ही नहीं है, मकान भी गया । तो हर आदमी की अपनी आइडेंटिटी है । आपका अपना एक व्यक्तित्व है। बीमार, स्वस्थ, जैसा भी है, आपका अपना व्यक्तित्व है । उस व्यक्तित्व को इतना धीमे भी नहीं साफ करना है कि वह अपने को वापस स्थापित करता चला जाये। इतनी तेजी से भी नहीं साफ कर देना है कि आठ घण्टे के बाद पूछें कि मैं कौन हूं । तो हालत खतरनाक हो जायेगी ।

तो इधर मैंने जानकर तीन दिन तय किये हैं—बहुत सोचकर, बहुत प्रयोग करके तीन दिन तय किये हैं । जल्दी इनको सात दिन भी करना चाहता हूं, लेकिन तब भी डर लगता है क्योंकि सात दिन में आप कितनी गहराई में चले जायेंगे कि आप लौटना न चाहेंगे। तीन दिन में मैं आपको इतनी गहराई तक भर ले जाता हूं, जहां से आप कुछ अनुभव भी करें

और अपनी पूरी पुरानी व्यवस्था में वापस भी लौट सकें। इस प्रयोग को लम्बा किया जा सकता है इसी इंटेंसिटी पर सात दिन, पन्द्रह दिन, इक्कीस दिन । इक्कीस दिन के बाद और लौटने से इन्कार कर देंगे । आपको तो कोई नुकसान नहीं होने वाला है। मेरा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। लेकिन धर्म ने जो नुकसान सदा से पहुंचाया है संसार को, वह शुरू हो जायेगा। हमारे ख्याल में नहीं है कि धर्म एक बुनियादी नुकसान पहुंचाता रहा है। कि जिन लोगों को भी उसने गहराई दी, वे संन्यासी हो जायेंगे, वे भाग जायेंगे । मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि भगोड़ा कोई भी हो । मैं इस पक्ष में हूं कि आपकी जिन्दगी में जो हुआ है, वह आप जहां हैं, वहीं घटित हो । और मैं मानता हूं कि उसके ज्यादा परिणाम होंगे, क्योंकि आप आस-पास जुड़े हुए हैं इस जगत् से। वह जगत् भी आपसे रूपांतरित होगा । और मैं मानता हूं कि जब तक बीमार थे, तब तक पत्नी का साथ दिया और जब स्वस्थ हुए तो भाग गये! तब तो बीमार आदमी ही बेहतर था । मैं तो मानता हूं, यह भी कर्तव्य का हिस्सा हुआ । बल्कि अब यह प्रेम का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए कि जिस दिन मैं शांत हो जाऊं, मेरी पत्नी को तो मुझे शांत करने की चिन्ता करनी चाहिए, क्योंकि बीमारियां मैंने उस पर निकालीं, क्रोध उस पर निकाला। घृणा उससे की, लड़ा उससे, प्रेम उसे कभी दिया नहीं । अब दे सकता हूं, अब मैं भाग रहा हूं !

तो मैं किसी को उसके जीवन व्यवस्था से तोड़ने के पक्ष में नहीं हूं । इसलिए समय को लम्बा भी नहीं कर सकता और इस समय के लम्बे होने से धर्म के प्रति एक भय व्याप्त हो गया । लोग डरते हैं । पति उत्सुक होता, पत्नी डरती है, पत्नी उत्सुक होती है, पति डरता है, बेटा उत्सुक होता है,

बाप डरता है । यह बड़े मजे की बात है कि अगर एक बाप के सामने विकल्प हो कि लड़का गुंडा हो जाये कि संन्यासी तो बाप गुंडा होना पसन्द करेगा । क्योंकि कम से कम घर में तो रहेगा । और गुंडे के लौट आने की सम्भावना है, संन्यासी के लौट आने की कोई सम्भावना नहीं है । यह बड़े मजे की बात है कि बुद्ध के बाप कोई प्रसन्न नहीं हैं । यानी बुद्ध अगर चोर भी हो गये होते, तो बाप इतने परेशान न होते, जितने बुद्ध के संन्यासी हो जाने से परेशान हुए । स्वाभाविक भी है ।

तो मैं तोड़ने के पक्ष में नहीं हूं, इसलिए इस पीरियड को लम्बा भी करने में मैं निरन्तर विचार करता हूं, लेकिन लम्बा करने की कुछ कठिनाई है। इसको इससे छोटा भी नहीं किया जा सकता । तीन दिन मैंने कुछ सोचकर तय किये हैं। मनुष्य के मन के कुछ गहरे में यह है—जैसे कि आप नये मकान में आयें तो आपको तीन दिन तो शायद उसमें नींद ही न आ सके—नये मकान में । और तीन सप्ताह तक तो वह मकान आपको नया लगेगा, तीन सप्ताह के बाद नहीं लगेगा । तीन सप्ताह मन को किसी भी नयी चीज के लिए राजी होने में लग जाते हैं । और तीन दिन से राजी होने को शुरू होता है और तीन सप्ताह में पूरा हो जाता है ।

इसलिए आदमी मरता है तो हम तीसरा दिन मनाते हैं। अब एक नया एडजस्टमेंट है । एक आदमी कम हो गया है, तीन दिन में हम राजी हो पायेंगे । फिर हम तेरहवां दिन मनाते हैं फिर हम कुछ और राजी हो गये होंगे । फिर हम राजी होते जायेंगे । वह हमने टाइम स्केल कुछ सोचकर ही, बहुत से अनुभवों से तय किये हैं। दिन दो दिन के फर्क हो सकते हैं, लेकिन तीन दिन का मेरा अपना ख्याल ऐसा है कि

तीन दिन छोटा से छोटा यूनिट है । काम करने के लिए, और यह प्रक्रिया इतनी तेज है कि अगर आप ऑनेस्टली तीन दिन इस पूरी प्रक्रिया को करें तो फर्क होने शुरू हो जायेंगे ।

अगर आप खाली हो जाते हैं अपने पुराने बोझ से और पुरानी आदतों की धाराएं टूट जाती हैं तो फिर आपको ध्यान में गति दी जा सकती है । और इसलिए प्रत्येक प्रयोग के बाद दस मिनट का जो गैप है, वह गति देने का गैप है । तीस मिनट आप कुछ खाली कर रहे हैं, कुछ तोड़ रहे हैं, कुछ ओवर-फ्लो होने दे रहे हैं और दस मिनट सिर्फ प्रतिक्षा कर रहे हैं । उस दस मिनट में आप में ध्यान आना शुरू होगा । जिस दिन उस दस मिनट में ध्यान आना शुरू हो जाये, उस दिन वह जो दस मिनट में उतरेगा, वह धीरे-धीरे चौबीस घण्टे आपके साथ रहने लगेगा, क्योंकि वह इतना आनन्दपूर्ण है ।

इसलिए इधर मेरा यह भी अनुभव है कि हमने अशान्ति का दुख तो जान लिया, शान्ति का सुख नहीं जाना, इसलिए हमारे पास बहुत विकल्प नहीं है, चुनाव नहीं है। हम निरन्तर कहते हैं कि क्रोध बुरा है, लेकिन अक्रोध हमने जाना ही नहीं। तो हम चुनाव कैसे करें ? हम निरन्तर कहते हैं कि यह सब संसार बेकार है, लेकिन हमने कोई मुक्ति का तो किसी तरह का रस जाना नहीं । हम जिस चीज की निन्दा कर रहे हैं उसी को भर जानते हैं और जिसकी हम आकांक्षा कर रहे हैं वह बिल्कुल अपरिचित स्वाद है, और जो अपरिचित स्वाद है वह चुना नहीं जा सकता, उसका स्वाद मिलना चाहिए। एक दफे भी मिल जाये···अब एक आदमी ने अन्धेरे ही अन्धेरा जाना है अब वह बहुत दफे कहता है, अन्धेरा छोड़ना चाहता हूं, प्रकाश पाना चाहता हूं। लेकिन जब वह यह

बोलता है कि मैं अन्धेरा छोड़ना चाहता हूं और प्रकाश पाना चाहता हूं और अन्धेरा छोड़ना चाहता हूं, यह कहते वक्त तो उसका अनुभव होता है। जब कहता है प्रकाश पाना चाहता हूं तब सब धुंधला हो जाता है। तब इतना ही होता है, अन्धेरा नहीं होता है लेकिन प्रकाश की कोई रेखा नहीं बनती। और मैं मानता हूं कि अब यह नहीं छोड़ सकता है क्योंकि हम छोड़ तभी सकते हैं, जब उससे विपरीत हमें मिलना शुरू हो जाये, अन्यथा छोड़ना मुश्किल है। क्योंकि हम यह भी खो दें, जो है, और वह भी न मिले, जो नहीं है, जो हमें पता ही नहीं है। तो आदमी इतनी हिम्मत नहीं जुटा पाता। कभी कोई लाख दो लाख में एक आदमी जुटाता है उसको हम अपवाद माने हुए हैं, वह नियम के बाहर है। उसके लिए कोई व्यवस्था की जरूरत नहीं पड़ती, और वैसा आदमी कई दफे भूल भरी बातें दूसरों से कहता है, वह कहता है तुम्हें भी व्यवस्था की कोई जरूरत नहीं है। वह यह ठीक कहता है, बाकी वह बेमानी है बात।

यह साधारण जन जो है हमारा, जो औसत आदमी है, यह कुछ पा ले तो कुछ छोड़ने को राजी हो सकता है। तो इधर मैं इसको तीस मिनट में खाली करवाता हूं और दस मिनट मैं मौका देता हूं कि वह जगह खाली हो गयी, उसमें कुछ भर आये। जैसे प्रकृति वैक्यूम को बर्दाश्त नहीं करती, वैसा चित भी नहीं करता। अगर आप गलत से खाली हों तो ठीक भरना शुरू हो जाता है। एक दफे खाली होना जरूरी है।

तो इसलिए दो हिस्से हैं उसमें—एक तो कैथार्सिस का है, जो खाली होने का है। और दूसरा हिस्सा ध्यान का है, जो कुछ किसी चीज के उतरने का है, किसी चीज के भरने का

है। उसमें आपको कुछ भी करना नहीं है। यह अनुभव अगर आपको धीरे-धीरे दस मिनट में उतरने लगे, तो यह अनुभव आपके साथ चौबीस घण्टे रहने लगेगा और यह अनुभव आप को नयी बीमारियां इकट्ठी करने से रोकेगा, नये दमन करने से रोकेगा। नयी गलतियां करने से रोकेगा, फिर से पुराने रास्तों पर नया-नया जाने से रोकेगा। यह अनुभव है, यानी अब आपको निर्णय लेना पड़ेगा कि मैं क्रोध न करूंगा। अब आप जानते हैं, अक्रोध का आनन्द। अब आप क्रोध नहीं करेंगे।

और यह जो कैथार्सिस का प्रयोग है, वह तीन महीने का है। अगर कोई ठीक से करेगा तो ज्यादा से ज्यादा तीन महीना चलेगा, फिर धीरे-धीरे शिथिल होता जायेगा, तीन सप्ताह में भी शिथिल होने लगेगा। फिर धीरे-धीरे वह खत्म हो जायेगा। आप नाचना चाहेंगे तो न नाच सकेंगे तीन महीने के बाद, चिल्लाना चाहेंगे तो न चिल्ला सकेंगे, रोना चाहेंगे तो न रो सकेंगे, क्योंकि वह होना चाहिए न भीतर। आप एक दम खाली और रिक्त हो गये होंगे। पुराना निकलेगा ही नहीं, तो आप रोयेंगे कैसे ? हंसना निकलेगा नहीं, आप हंसेंगे कैसे ? तो वह जो कैथार्सिस है, वह एक अर्थ में मापदण्ड का काम करेगी, वह रोज-रोज कम होती चली जायेगी। जितनी तीव्रता से करेंगे, उतनी शीघ्रता से कम होती चली जायेगी।

अगर उसको रोका तो उतना वक्त लेगी लम्बा और लम्बा वक्त खतरनाक है, क्योंकि इस बीच आप और इकट्ठा कर लेंगे। इसलिए तीन दिन में इंटेंसिवली, मैं इसको और लगाने को कहता हूं, कि तीन बैठक में आप इसको पूरे वक्त निकाल लें। यह निकल जाये तो यह अनिवार्य हिस्सा नहीं है, यह तो खत्म हो जायेगा अपने आप। यह तो सब बीमारी को फेंक

देना है बाहर। फिर आप नयी बीमारी इकट्ठी नहीं करेंगे। और इसके लिए कोई जरूरत न रह जायेगी। एक दूसरा हिस्सा इसके पीछे आना शुरू होगा। अभी कैथार्सिस ध्यान के पहले है। तीस मिनट की कैथार्सिस है, दस मिनट का ध्यान है। जैसे-जैसे कैथार्सिस खत्म होगी, वैसे-वैसे दस मिनट के बाद कुछ होना शुरू हो सकता है।

फिर नाचना आ सकता है, लेकिन वह नाचना बहुत और होगा। अभी यह नाचना कैथार्सिस है। अभी यह नाचने में कुछ निकल रहा है। उस नाचने में कुछ हां-ना हो रहा है। फिर गीत निकल सकता है, फिर खंजड़ी बज सकती है, फिर कोई नाचकर गा सकता है सड़क पर। लेकिन वह और बात है। फिर वह कैथर्सिस नहीं है, फिर जो आपको मिल गया है, उसके आनन्द का अतिरेक है, वह हर्षोन्माद है, वह एक्सटेसी है, वह पीछे आयेगा। यह पहला हिस्सा जब खत्म होगा, तब दूसरा हिस्सा शुरू होगा। वह इसके पीछे की बात है। इसलिए उसकी साधारणतः बात नहीं करता, क्योंकि अभी वह मिड-स्टेप हो सकता है। अभी हमारे ख्याल में पड़ना मुश्किल हो जाये कि क्या-क्या है। इसलिए यह निकल जाये एकबारगी तो वह अपने से धीरे-धीरे उसकी धारा टूटेगी। अभी इसके करने से हल्कापन लगेगा, फिर उसके करने से बहुत हल्का हो जायेगा। वह क्रिएटिव ऐक्ट है। रोग के बाहर हो गये हैं आप, अब एक स्वास्थ्य ऊपर आयेगा। अब उस स्वास्थ्य की अपनी धाराएं होंगी बहने की।

इतना ही काफी नहीं है कि आपमें से क्रोध न बहे, किसी दिन अक्रोध भी बहना चाहिए। इतना काफी नहीं है कि आपसे घृणा न निकले, किसी दिन प्रेम भी निकलना चाहिए। घृणा न निकले, यह जरूरी है, पर्याप्त नहीं। प्रेम

निकले, तभी आप पर्याप्त पर पहुंच गये हैं। वह दूसरे हिस्से में घटना घटनी शुरू होगी।

और इसको मैं समूह पर जोर देता हूं। असल में अकेले में जाने का डर भी वही है, समूह का डर भी है। वही सहयोग भी है, वही हमारा डर भी है। बहुत लोग आते हैं, वे मुझसे कहेंगे, अकेले में हम कर लें तो क्या हर्ज है? कोई हर्ज नहीं है। तुम अकेले में करना चाह रहे हो। तो वह जिस वजह से अकेले में करना चाह रहे हो, वही वजह तो रुकावट भी है। तुम डरते हो, कोई देख न ले। जियोगे अकेले में फिर? ध्यान तो अकेले में कर लोगे। जीना तो पड़ेगा समूह में।

वह जो संन्यासी बहकता था, उसका कारण था, ध्यान किया उसने अकेले में और जीना तो पड़ता है समूह में। जिसको अकेले में ध्यान करना थिर हो जायेगा वह समूह से भागने लगेगा। जिंदगी तो समूह में है, जियेंगे हम कैसे अकेले में? जियेंगे तो सबके साथ और ध्यान करेंगे अकेले में। नहीं, इनका तालमेल नहीं होता। जब जीवन ही सब के साथ है तो ध्यान भी सब के साथ हो, तो उसमें सहजता होगी। और जो मैं कुछ हूं, अच्छा हो कि लोग जान लें। अगर मेरी पत्नी मुझे देख लेती है ध्यान के पहले चिल्लाते और गालियां बकते और घंसे तानते, तो कल अगर मैं उसमें भरकर घूंसा भी तानूं तो हो सकता है वह हंस पाये। क्योंकि अब जरूरी नहीं है मानना कि मैं उसके ऊपर घूंसा तान रहा हूं। अब यह अनिवार्य नहीं रहा, क्योंकि इसने हवा में घूंसे तानते हुए मुझे देखा है। अगर मैं अपनी पत्नी को रोते-चीखते ध्यान में देखता हूं, कल वह अचानक छोटी-सी बात पर रोने-चीखने लगे, तो मुझे यह मानने की जरूरत नहीं है कि वह

मुझ पर डायरेक्टेड हैं मैं सिर्फ बहाना ही हूं। अब मैं जानता हूं, यह तो बिना इसके हो सकता हूं।इसलिए समूह में मेरा जोर है।

फिर दूसरी बात यह है कि दुनिया इतना विराट प्रश्न है आज कि इस एक आदमी को बदल कर हम ऐसा ही कर रहे हैं जैसे चम्मच भर रंग से समुद्र का पानी रंग रहे हो, उससे कुछ होने वाला नहीं है। रंगने वाला थकेगा, चम्मच टूट जायेंगे, पानी जैसा है, वैसा ही रहेगा। अब तो मास स्केल पर चूंकि बीमारी है, विराट उसका रूप है, विराट ही संघर्ष करना होगा। इससे काम नहीं चलेगा कि गांव में एक आदमी ध्यान कर ले मंदिर में बैठकर पूरे गांव को डुबाना पड़ेगा।

इधर मेरी योजना है कि एक-दो-तीन वर्ष में हजार, दो हजार, युवक-युवतियों को संन्यास हो, जो पीरियडिकल हो। उसमें मेरी दृष्टि है कि जिसको जब लौटना हो उस वक्त लौट जाये। यह संन्यास तो आजीवन नहीं है, आजीवन हो, तो प्रोफेशनल हो जाता है। यह मौज है। आपको छः महीने की छुट्टी मिली, आप छः महीने के लिए मौज से संन्यासी हो जायें फिर घर लौट जायें, फिर घर में रहें। तो धीरे-धीरे हजारों लोग संन्यासी होकर घर में पहुंच जायेंगे। ये एक-एक घरों को बदलने वाले सिद्ध होंगे और ये कभी भी महीने दो महीने के लिए वापस संन्यासी हो सकते हैं।

यानी संन्यास को मैं—कोई जिन्दगी से अलग चीज नहीं है बल्कि जिन्दगी का फैला हुआ हाथ है—वह शक्ल देना चाहता हूं। तो ये हजार, दो हजार लोग सदा ही संन्यासी रहेंगे। इसमें लोग बदलते रहेंगे, मगर ये दो हजार बने रहेंगे। इन दो हजार को लेकर मेरा ठीक, जिसको कहना चाहिए कि एक मॉरल अटैक, एक गांव पर कर देने का है।

दो हजार आदमी पूरे गांव पर सात दिन के लिए ठहर जायें। पूरे गांव को हम सात दिन ध्यान में डुबाने की कोशिश करें। इससे कम पैमाने पर काम नहीं होगा। और यह टेकनीक ऐसा है कि इसमें सत्तर प्रतिशत व्यक्तियों के प्रवेश की सम्भावना है। हंड्रेड प्रतिशत हो सकती है, पर वे तीस प्रतिशत कमजोर पड़ जाते हैं, नहीं जा पाते हैं, नहीं कोआप्रेट कर पाते हैं, हजार तरह की बातें सोचकर उठ जाते हैं। लेकिन सत्तर प्रतिशत तो अनिवार्य रूप से इसमें प्रवेश हो जाते हैं। अगर हम एक गांव को, दस हजार का गांव हो और उसमें हर लोगों को भी हम ध्यान में प्रवेश करवा सकें, तो हम उस गांव की जिन्दगी बदलने में समर्थ हो जायेंगे। क्योंकि अभी भी किसी गांव में हजार गुण्डे नहीं हैं। यानी अभी भी बुराई जो है, कोई इतनी बड़ी नहीं हो गयी है। लेकिन कठिनाई सिर्फ यह है कि बुराई के समूह हैं और भलाई के समूह नहीं हैं।

तो इस कारण से जितना बड़ा हो सके और जितना व्यापक हम कर सकें, और जितने कम समय में हो सके—क्योंकि एक गांव को अगर हमें चार महीने करवाने में लग जायें तो हम पूरे गांव को नहीं डुबा सकते। तो इसलिए टेकनीक को रोज गतिमान करते जाना है। अब आपने ख्याल किया होगा, सुबह का जो टेकनीक है, उससे रात का टेकनीक और तीव्र है। हम पूरे गांव को रात इकट्ठा कर सकते हैं, जब कोई काम पर नहीं है, सब फुर्सत में होते हैं। पूरे गांव को इकट्ठा कर सकते हैं। पूरे गांव का डुबा सकते हैं। सुबह को उनको कुछ करना भी है, श्वास भी लेनी है कुछ और भी कहना है, रात को वह भी करना नहीं है।

कोई एक सौ आठ विधियां हैं ध्यान की। और उनमें से

प्रत्येक विधि को स्टडी किया जा सकता है। उसमें थोड़ा-सा जोड़ करना पड़े। अब जैसे इसमें मैं पहले दस मिनट श्वास के लिए जोड़ता हूं। श्वास का ख्याल सदा से है। लेकिन, सदा से ख्याल था रिदमिक ब्रीदिंग का। रिदमिक ब्रीदिंग से अगर यह प्रयोग किया जाये तो वर्षों लगेंगे। मेरा जो प्रयोग है, वह नॉन रिदमिक ब्रीदिंग का है। उसमें रिदम को नहीं लाना है। क्योंकि रिदम के साथ आप एडजस्ट हो जायेंगे। नॉन रिदम में प्रश्न है ताकि आप एडजस्ट न हो पायें। खलबली तत्काल मिट जाये, उसको प्रतीक्षा न करनी पड़े। तो इसलिए वह दस मिनट के लिए मैं, बस सिर्फ लोहार की धौंकनी की तरह छोड़कर, जिसमें कोई व्यवस्था नहीं है, ताकि दस मिनट में आप क्याटिक हो जायें और आप क्याटिक हो जायें, अराजक हो जायें, तो फिर हम दूसरे चरण में कैथार्सिस कर सकते हैं, नहीं तो नहीं कर सकते हैं।

मजा यह है भस्त्रिका कभी रही, लेकिन उसके दूसरे प्रयोग हैं, उसका कभी भी ध्यान के लिए प्रयोग नहीं है। उसके प्रयोग दूसरे हैं। प्राणायाम के जो प्रयोग थे, वह सब लयबद्धता के प्रयोग थे, इसलिए उनकी चोट तीव्र नहीं हो सकती थी। अगर तीव्र चोट करनी है तो बिलकुल अराजक होना चाहिए। उसकी अराजकता ही उसकी स्पीड है।

अब दूसरा जो चरण है, यह दूसरा चरण रोकने के उपाय किये हैं योग ने। इसलिए आसन की व्यवस्था की है। आसन की जो व्यवस्था है वह कैथार्सिस को मद्धिम गति से करने की व्यवस्था है। तो शरीर पर प्रकट न हो, भीतर से निकले। तो शरीर को पहले आसनों का वर्षों तक अभ्यास कराया जायेगा। जैसे सिद्धासन है या पद्मासन है, ये इस बात के अभ्यास हैं कि भीतर चित्त में कुछ भी हो, शरीर थिर रहे। भीतर बहुत

कुछ होगा कैथार्सिस भीतर से भी हो जायेगी। यानी मैं आपको घूंसा मारूं, घूंसा उठाकर यह जरूरी नहीं है। हाथ बिना उठाये भी घूंसा मारा जा सकता है।

तो योग ने यह व्यवस्था की थी कि पूरा पहले आसन सिखायेंगे वर्षों तक, ताकि आपके शरीर पर प्रकट न हों, नहीं तो लोग पागल कहेंगे। लेकिन तब पहले वर्षों आसन सिखायी। न तो कोई वर्षों आसन सीखने को आज तैयार है। न ही मैं मानता हूं कि इतना समय खराब करने की जरूरत है। फिर यह भय क्या कि बाहर निकल जायेगा। इस भय को तोड़ दें। हम कहेंगे कि निकलना उचित है यह। और भय टूट गया, और तो कुछ मामला नहीं है यह। हम डरते हैं कि ऐसा न हो जाये कि मैं भला आदमी और अचानक चिल्लाने लगूं, रोने लगूं। हमारी मान्यता है। अब यह प्रयोग जहां-जहां हुआ है—एक दो दफे, तीन दफे प्रयोग होता है, गांव भर को पता चल जाता है। कोई ऐसी बात नहीं है। उसके लिए वर्षों खराब करवाने के मैं पक्ष में नहीं हूं। तो मैं तो उल्टे प्रयोग के पक्ष में हूं कि जो शरीर करना चाहे उसको और सहयोग देकर पूर्णता से करो, ताकि छः महीने में निकलता हो, वह तीन दिन में निकल जाये। और एक मजे की बात है कि योग में कभी-कभी ऐसी घटनाएं घटती हैं। वे किन्हीं गुफाओं में किन्हीं पहाड़ियों पर इनको ले जायेंगे और वहां इनके लिए उपाय बनायेंगे, नहीं तो होने वाला नहीं है। अब क्यों ऐसा होने दें? जिन्दगी में ही इसको स्वीकार कर लो।

दूसरी मजे की बात है कि यह प्रक्रिया अपने आप घटती है। अगर न बताया जाये तो घबराने वाली है। और जब घटती है तो आदमी रोकने की कोशिश करता है। रोक लें तो

रुक जायेगी, लेकिन वह जो रुक जाना है, वह उसकी कैथार्सिस न होने देगा। तो इधर मैं इसको पूरी की पूरी गति देना चाहता हूं और इसके लिए पूरी स्वीकृति देना चाहता हूं। और ऐसे ग्रुप गांव-गांव में पैदा करना चाहता हूं, जिनके भीतर यह एक स्वीकृति है। यह स्वीकृत है। यह स्वीकृत होने से निकलने में इसको बड़ी आसानी होगी। इसका प्रवाह चाहे जो चाहे करे।

तो इसलिए वे जो लोग कहते हैं कि अकेले में क्यों न ध्यान कर लें—अक्सर तो वे लोग हैं, उनसे पूछिए कि आपने किया, अकेले में कौन रोकता था आपको करने को ? अकेले तो आप हैं ही, आपको कौन रोका है कब करने से ? आपने किया ?

आदमी का मन बहुत ही चालाक है। जब उसे एक विधि करने को कहो तो वह कहेगा अगर वैसा कर लें तो कोई हर्ज है ? और वैसा उसने कभी किया नहीं ! और वह सिर्फ बहाना मिल गया था कि वह न करे। और कौन उससे कहने कब गया था ? वह कहेगा, वैसा कर लें ! आप अगर वैसा करने को कहेंगे तो वह कहेगा कि वैसा करना है ! और कोई रास्ता नहीं है।

असल में न करने से बचने की बड़ी इच्छाएं हैं। मेरे पास लोग आते हैं। जब मैं उनसे कहता था कि तुम्हें यह करना पड़ेगा, तब वे कहते थे, आप कुछ कर दें, हमसे क्या हो सकता है। हमसे हो सकता होता तो हम कर लेते। आप कुछ कर दें। मैं कहता था, नहीं तुम्हें ही करना पड़ेगा। और वे कहते हैं, बड़ी कृपा होगी। परमात्मा ही करे तो हो जाये, हमसे नहीं हो सकता। अब जब मैं उनसे करवा रहा हूं तो वे मेरे पास आते हैं कि अगर हम अकेले में करें, हम ही कर लें—तो आपकी क्या जरूरत है ! तब मुझे बड़ी हैरानी होती है। बड़ी

हैरानी होती है कि यह वही आदमी है। नहीं करना है तो नहीं जानो कि नहीं करना है, क्योंकि कौन तुमसे कहने जा रहा है ? लेकिन नहीं, यह भी नहीं जानना है, हम तरकीबें निकालकर देंगे। और जोखिम तो इतनी बड़ी है भीतर प्रवेश की हमें छोटी-मोटी जोखिम करवा कर परीक्षा लेनी ही चाहिए, ले लेनी ही चाहिए, नहीं तो बड़ी जोखिम कैसे उठायेगा। या तो पर्तें टूटेंगी बहुत तरह की, बहुत घटनाएं घटेंगी। अगर वह रोने-चिल्लाने से डर गया है तो मैं मानता हूं कि उसका भीतर न जाना ही अच्छा है क्योंकि भीतर तो और कुछ बहुत घटेगा। बहुत मवाद है, वह टूटेगी, फूटेगी, बहेगी। भीतर तो बहुत-सा कोढ़ है, वह सब दिखायी पड़ेगा। वह उसे तो कैसे जान पायेगा। इसलिए अगर वह इससे डर गया है तो ठीक ही है।

तो मैं मानता हूं कि जिसने इतनी हिम्मत की, वह थोड़ा हिम्मतवर है। और थोड़ी हिम्मत करेगा, कदम-कदम भीतर ले जाया जा सकता है। और मैं क्या करता हूं, कोई भी क्या करेगा ? कर तो आप ही रहे हैं। ज्यादा से ज्यादा यह सिचुएशन पैदा की जा सके। और आप बिना सिचुएशन के नहीं कर सकेंगे, यह साफ है, अन्यथा कौन रोकता है। आप मजे से करें। जिसको भी करना है, वह मजे से करे। उसे कौन रोकने, कब गया है। लेकिन मैं इधर इसलिए सिचुएशन पैदा करना चाहता हूं। लेकिन हमारा है मन। हमारा मन ऐसा है कि कहीं कुछ होने लगे, तो भी डर लगता है कि कहीं हो ही न जाये।

एक महिला इधर आयी थी, अभी एक कैम्प में। तो पहले दिन उसने प्रयोग किया और बहुत अच्छा परिणाम हुआ। पहले भी तीन कैम्पों में वह आयी है। तो मुझे आकर पैर पकड़ कर रोकर उसने कहा कि आपने पहले ही क्यों न करवाया।

हमारा इतना समय बेकार गया। बड़े आनन्द, बड़े भाव से उसने कहा, पहले आपने क्यों नहीं प्रयोग करवाया? और तीसरे दिन वह भाग गयी बीच में से और दोपहर मुझसे कह गयी कि मैं घबरा गयी। वह तो आपका पहले ही वाला प्रयोग अच्छा था, इसमें तो तमाम रोना, चिल्लाना और चीखना—मैं तो पागल हो गयी हूं। यही महिला अभी एक दो दिन पहले मुझसे कहती है कि आपने यह पहले क्यों न करवाया। और तीसरे दिन कहती है कि नहीं, वह ठीक था। शांत होकर बैठने वाला प्रयोग बहुत अच्छा था और भाग गयी बीच से। अब यह क्या करे? आदमी का मन बहुत अजीब है। वह बचाव खोज रहा है। नहीं होगा तो वह आकर कहेगा कि हो नहीं रहा है। होगा तो वह आकर कहेगा कि कहीं हो तो नहीं जायेगा! दोनों बातें कहेगा! और बहुत कभी-कभी हंसने जैसा मालूम होता है। हैरान करने वाले लोग हैं।

प्रश्न—मेरे सामने एक दूसरा सवाल आया। कई विचारक लोग भी थे, कई लोग भी थे—आपकी जो प्रवृत्ति है, उनके प्रति थोड़ा सद्भाव भी था—इनके पास धारणायें हैं कि इन्सान दो ढंग से काम करता है, सब्जेक्टिव और ऑब्जेक्टिव। तो आपकी जो प्रवृत्तियां हैं और चाहते हैं और आपके पास इतना समय भी नहीं है और हमारे पास भी इतना समय भी नहीं है। हम बड़ी आसानी से और बड़े पैमाने पर काम करना चाहते हैं। अगर वैसा ही कुछ करना है तो आपकी जो शक्तियां हैं और भावनाएं हैं वे कन्स्ट्रक्टिव ढंग से चैनेलाइज हो जायें, तब बड़ी आसानी से काम चल सकता है। लेकिन कभी आपकी बातों में इतना और के प्रति कुछ खण्डनात्मक रुख होते हैं—गांधी या महावीर कोई भी आपसे छूटता नहीं

है—कितने लोगों को लगता है और मुझे भी लगता है। तो इससे यह होता है कि जो लोग सद्भाव की दृष्टि से देखते हैं, उनके दिमाग में भी तो एक हलचल मचती है। तो क्या यह अच्छा नहीं होगा कि आप कन्स्ट्रक्टिव दृष्टि से आपको जो कुछ कहना हो वह कहें—औरों ने क्या किया और क्या कहा, वह बात छोड़कर कहें तो क्या आसान नहीं होगा?

नहीं, इसलिए कि मर ही जायेगा; आसान तो नहीं होगा, काम भी मर जायेगा। क्योंकि यह दलील नयी नहीं है। महावीर के पास भी लोगों ने आकर यही कहा कि आप कृपा करके अगर उपनिषदों और वेदों के खिलाफ न बोलें तो लोगों का सद्भाव रहेगा। बुद्ध के पास भी लोगों ने आकर यही कहा कि आप अगर महावीर के खिलाफ न बोलें तो लोगों का सद्भाव रहेगा और शंकर को भी लोगों ने यही आकर कहा कि अगर आप बुद्ध के खिलाफ न बोलें तो आसानी पड़ेगी। जिनका बुद्ध के प्रति सद्भाव है, वे कभी आपको साथ न देंगे। जीसस को भी यही कहने वाले लोग थे। तो थोड़ा सोचने जैसा मामला है कि ये सारे के सारे लोगों को यह समझ में बात नहीं आयी, समझाने वाले लोग थे, आज हम उनका नाम भी नहीं बता सकते। कारण क्या है? न किसी को ख्याल में आता, न शंकर को ख्याल में आता, न जीसस को और न महावीर को। मुझे भी ख्याल में नहीं आता। उसका कारण है।

पहली तो बात यह है कि जिसको हम व्यक्ति के भीतर आमूल परिवर्तन की व्यवस्था देखते हैं, वे मूलतः डिस्ट्रेक्टिव होते हैं। वे मूलतः डिस्ट्रेक्टिव होते हैं, उसमें जो सृजनात्मकता आती है, वह पीछे आया हुआ फल है। उसके प्रारम्भिक चरण तो सब विनाश के हैं। आप जो हैं, अगर मैं कन्स्ट्रक्टिव कुछ बात करूं तो इसमें भी एक जोड़ होगा, आप जो हैं, और

इसीलिए आपको आसानी पड़ेगा । सद्भाव बनाना भी आसान होगा, क्योंकि आपको मैं अंगीकार करता हूं, जैसे आप हैं । ज्यादा से ज्यादा मैं यह कहता हूं कि कमीज के ऊपर आप बण्डी और पहनें, इससे आप और अच्छे दिखेंगे । आदमी आप बहुत अच्छे हैं, एक बण्डी और पहनें इससे और सुन्दर हो जायेंगे । इसके लिए आप राजी हो जाते हैं, क्योंकि आपको बदलने को तो मैं कुछ कहता नहीं । कुछ छोड़ने को कहता नहीं, कुछ तोड़ने को कहता नहीं, आपको मैं पूरा स्वीकार करता हूं और कुछ एडीशन करता हूं आपको । इसको आप कन्स्ट्रक्शन कहते हैं !

साधारणतः इसको हम कन्स्ट्रक्शन कहते हैं कि आप जैसे हैं, उसको हम स्वीकार कर लें । निश्चित ही मुझे काम में सुविधा होगी, मैं आपको बण्डी पहना दूं अगर । लेकिन आपको बण्डी पहनाने से मुझे प्रयोजन ही नहीं है । मैं आपको बदलना चाहता हूं । आपको सुधारना, संवारना नहीं चाहता । आप सुधरे-संवरे होकर भी यही रहेंगे, जो आप हैं, हो सकता है और खतरनाक हो जायें, क्योंकि अभी शायद कभी-कभी आपको अपना शरीर भी दिखायी पड़ जाता हो, बण्डी पहनकर वह भी दिखायी न पड़े, कोट पहनकर और भी दिखायी पड़ना बन्द हो जायेगा ।

तो मौलिक रूप से तो मैं आपको मिटाना चाहता हूं और उस मिटाने में बड़ी लम्बी यात्रा है । और अभी तो आपके विचार पर चोट करूंगा, कल आपके भाव पर चोट करूंगा परसों आपके पूरे अस्तित्व पर चोट करूंगा । तो अगर विचार से ही आप भाग खड़े हुए तो मैं समझता हूं, अपना कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि और गहरी चोट कैसे आप सहेंगे ? गांधी आपके लिए विचार से ज्यादा नहीं हैं, वह आपकी विचारधारा

हैं । मुहम्मद आपकी विचारधारा हैं या महावीर आपकी विचारधारा हैं ? अगर विचार का इतना मोह है—सिर्फ विचार का, तो आप अपने अस्तित्व को बदलने वाले आदमी नहीं हैं ।

तो मेरे लिए तो उपयोगी है वह कि मैं देख लेता हूं कि आदमी बदलने वाला आदमी है कि सिर्फ जोड़ने वाला आदमी है । तो मैं तो आपके विचार पर चोट करके, आपकी बिल्कुल परिधि पर चोट कर रहा हूं । अगर वहीं से आप भाग खड़े होते हैं और मेरा आपसे सम्बन्ध टूट जाता है तो मैं समझता हूं कि अच्छा हुआ, इस झंझट में नहीं पड़ा, क्योंकि यह काम होने वाला नहीं था आपसे । चोट तो मुझे और गहरी करनी पड़ेगी । आपके भाव पर भी चोट करूंगा, कल आपके अस्तित्व पर भी चोट करूंगा । जिनको भी इतनी गहरी चोट करनी है, जो भी ट्रांसफॉर्मेशन के लिए उत्सुक हैं, वे कन्स्ट्रक्टिव नहीं हो सकते हैं । और जो कन्स्ट्रक्टिव हैं, उनसे कभी ट्रांसफॉर्मेशन किसी का हुआ नहीं है ।

वह चाहे गांधी हों, चाहे विनोबा—इन दोनों को मैं कन्स्ट्रक्टिव आदमी नहीं कहता हूं । इनसे किसी का कोई ट्रांसफॉर्मेशन नहीं हुआ । तो अगर मुझे भी नेतृत्व भर करना हो, तो वह जो मित्र सलाह देते हैं, उचित सलाह देते हैं । अगर मुझको भी एक महात्मा बनकर बैठ जाना हो, तो वह बहुत सरल मामला है । उससे ज्यादा सरल कोई काम नहीं है । तब मैं आप जैसे हैं, उसको स्वीकार करता हूं, और सजा देता हूं थोड़ा । आपके अहंकार को और फुसलाता हूं और सजा देता हूं, तो आपको परसुएड कर देता हूं । लेकिन तब बस मैं नेता होता, और कुछ नहीं होता, मैं महात्मा होता । इससे ज्यादा—आप पर मैं कुछ नहीं कर पाता । क्योंकि आपको तो मैं पहले ही स्वीकार करके चल पड़ा कि आपके साथ तो करने का कुछ

उपाय नहीं है।

तो मेरे जैसे व्यक्तियों को तो अनिवार्य रूप से इस उपद्रव से गुजरना पड़ता है। वह उपद्रव नया नहीं है, वह पुराना है। और मजा यह है कि महावीर ने जिन लोगों के खिलाफ कहा—महावीर जैसे आदमी को फिर महावीर के खिलाफ बोलना पड़ा, क्योंकि तब तक महावीर का भी अनुगामी वहीं खड़ा हो गया होता है, जहां उपनिषद का अनुगामी महावीर के वक्त खड़ा था। यह झगड़ा महावीर से नहीं है। महावीर का जो झगड़ा था, वही यह झगड़ा है। दिखता है कि महावीर से है, क्योंकि महावीर को उपनिषद के अनुयायी के साथ लड़ना पड़ा था, क्योंकि उपनिषद स्टेट्स-को हो गया था। अब मुझे महावीर से लड़ना पड़े, क्योंकि महावीर स्टेट्स-को हैं इसमें महावीर की भी सहानुभूति मेरे भी साथ हो तब, होगी ही, क्योंकि मैं काम वही कर रहा हूं और ऐसा नहीं कि यह काम कोई खत्म होने जाने वाला है।

कल मेरे जैसे को मुझसे लड़ना पड़ेगा, इसमें कोई उपाय नहीं है—यानी कल मेरे जैसे व्यक्ति को मुझसे इसी भांति लड़ना पड़ेगा। पर मेरी उसके साथ सहानुभूति होगी। किसी न किसी को लड़ना ही पड़ेगा, लड़ना ही चाहिए, क्योंकि तब तक मैं सैटल्ड हो जाऊंगा, कुछ लोगों के मन में बैठ जाऊंगा। जिनके मन में मैं बैठ जाऊंगा, उनको अन्सैटल्ड करना पड़ेगा।

तो मेरी दृष्टि में वह जो मित्र कहते हैं, बड़ी गणित की चालाकी की, होशियारी की बात कहते हैं। ठीक कहते हैं। नेतृत्व के लिए वही जरूरी है, लेकिन मुझे उसमें उत्सुकता ही नहीं है। मुझे उत्सुकता आपमें है। और आपके लिए कुछ हो सके तो उसमें उत्सुकता है। और उसके लिए वह जो

सर्जरी है, वह बहुत जरूरी चीज है। और विचार उसमें सबसे कमजोर हिस्सा है, जिस पर पहले चोट की जानी चाहिए। अगर उस पर ही चोट करने से आप तिलमिला जाते हैं तो फिर भीतर तो और चोटें करनी बहुत मुश्किल है, क्योंकि और गहरा अहंकार भीतर है, वह और गहरा होता चला जाता है। इधर मेरे लिए तो परीक्षा का उपाय बन गया है। यानी मैं तो मानता हूं कि मेरे खण्डन वगैरह को सुनकर भी कोई मेरे पास आ रहा है, तो मैं सोचता हूं कि उस आदमी के साथ कुछ मेहनत की जा सकती है। मैं उसको कहता नहीं कि वह मुझे माने, मेरे खण्डन को माने, इसको भी नहीं कहता। लेकिन फिर भी मेरे पास आ रहा है। और मेरे डिस्ट्रेक्टिव ढंग से भाग ही नहीं गया है तो मैं समझता हूं कि यह आदमी डिस्ट्रक्शन के लिए तैयार हो सकता है। इसके भीतर कुछ तोड़ा जा सकता है। यह आदमी थोड़ी देर टिक सकता है, अन्यथा हम सबकी मान्यताएं ऐसी हैं।

एक बड़ी कठिनाई है, बड़े मजे से मान्यताएं बनाये हुए हैं। और एक आदमी पर मान्यता नहीं है कोई। कोई गांधी का भक्त है, कोई मार्क्स का भक्त है। बंगाल में कोई मार्क्स का भक्त है, कोई गांधी का दुश्मन है। कोई महावीर का भक्त है, कोई मुहम्मद का, लेकिन इन सबका माइण्ड एक है। मेरी लड़ाई उस माइण्ड से है। वह इनको थोड़े दिन में समझ में आने लगेगा। क्योंकि जब मैं गांधी से लड़ता हूं तो मार्क्स्ट मेरे पास आ जाता है, वह कहता है, आप बिल्कुल सच बात कहते हैं। साल भर बाद वह एकदम भाग खड़ा होता है, जब मैं मार्क्स के खिलाफ बोलता हूं, तब वह भाग जाता है, क्यों-कि अब यह आदमी कुछ गड़बड़ हो गया है, पहले ठीक

था।

तो पांच-दस वर्ष लगेंगे कि लोग समझेंगे कि मुझे न मार्क्स से लेना है, न गांधी से। इररिलेवेंट हैं ये। आपके माइण्ड से मुझे लड़ना है। तो गांधी के भक्त से लड़ना है तो मैं गांधी के खिलाफ बोलूंगा, मार्क्स के भक्त से लड़ना है, तो मार्क्स के खिलाफ बोलूंगा और कई बार इन दोनों में बड़ा कन्ट्राडिक्शन दिखायी पड़ेगा। दिखायी पड़ेगा ही, क्योंकि मार्क्स के खिलाफ लड़ना है तो और ढंग से लड़ना पड़ेगा और गांधी के खिलाफ लड़ना है तो और ढंग से लड़ना पड़ेगा। इन दोनों बातों में कहीं भी इन्कन्सीस्ट्रेंसी दिखायी पड़ेगी, क्योंकि अगर मुझे गांधी के खिलाफ लड़ना हो तो मैं कन्सिस्टेंट हो सकता हूं। मुझे तो एक तरह के माइण्ड से लड़ना है। वह माइण्ड जो मार्क्स का पकड़ लेता है, गांधी का पकड़ लेता है, बुद्ध को पकड़ लेता है, उस माइण्ड से लड़ना है। उस माइण्ड से लड़ने के लिए मुझे नाहक इन विचारों से भी लड़ना पड़ रहा है। इनसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन यह लड़ायी करनी पड़ेगी। और अगर सिर्फ महात्मा बनकर रह जाना हो, तो बहुत सरल है। उससे ज्यादा सरल काम तो है ही नहीं। और हमारी समझ में उससे ज्यादा सरल काम तो है ही नहीं इसलिए इधर जो यह सलाह मित्र देते हैं, इन्हीं मित्रों की सलाह, इसी तरह के सोचने वाले लोग हजारों हैं। उनसे कुछ हो ही नहीं पाता।

प्रश्न—विचारों के साथ अगर झगड़ना ही है तो व्यक्ति निरपेक्ष विचारों के साथ झगड़ा करे, तो अच्छा नहीं होगा, क्योंकि कभी-कभी होता है कि इंसान को कभी हमारे अनजानपन से अन्याय भी हो सकता है।

सवाल यह है—एक तो यह कि यह जो सोचने के ढंग हैं

कि व्यक्ति को अलग करें, विचार को अलग करें, यह सही नहीं है। गांधी के सब विचार अलग कर लें तो गांधी में बचता क्या है? कुछ भी नहीं बचता है। एक मोहनदास का आदमी कीमत रखता है, उसे कुछ लेना-देना है? यह आदमी जो कुछ भी है, यह इकट्ठा जोड़ है और गांधी के व्यक्ति को वह अलग कर ले तो विचारों में क्या बचता है। वैसे तो किताबों में बहुत विचार रखे हुए हैं, एक मुर्दा किताब रह जाती है। व्यक्ति और विचार ऐसी कोई दो चीजें नहीं हैं। व्यक्ति ही विचार है, विचार ही व्यक्ति है। बस, अस्तित्व में तो इकट्ठे हैं इसलिए हम एक से नहीं लड़ सकते। हालांकि वह भी चालाकी की जाती है, वह चलाकी की जाती है, नहीं गांधी के व्यक्तित्व से तो हमें कोई मतलब नहीं है। मेरा तो इस विचार से विरोध है—पूरे विचार से नहीं, इस विचार से विरोध है। ये सब आत्मरक्षा के उपाय हैं।

दूसरी बात—कि सब अपनी परिस्थिति की उपज हैं। लेकिन वही परिस्थिति रावण भी पैदा करती है, वही परिस्थिति राम भी पैदा करती है। आज परिस्थिति तो दुनिया में एक है, लेकिन तीन अरब आदमी हैं। माना कि हम परिस्थिति के उपज होते हैं, लेकिन एकदम परिस्थिति की ही उपज नहीं होते, हम भी होते हैं; जो परिस्थिति को उपजाता रहता है, वह भी होता है हमारे बीच। परिस्थिति भी हमारा चुनाव होगी, परिस्थिति को भी हम बदलते हैं। परिस्थिति को बदलने में हम अपने को भी बदलते हैं, और निर्धारित होते हैं। इसलिए कोई व्यक्ति निपट परिस्थिति की उपज नहीं है।

तीसरी बात—जब महावीर के विरोध में कुछ कह रहा हूं या बुद्ध के या किसी के, तो असली सवाल महावीर या

बुद्ध से नहीं है। अगर दुनिया में अनुयायी न रह जायें तो वे बुद्ध, महावीर की बात ही बन्द कर दें। जिस दिन दुनिया अच्छी होगी और अनुयायी नहीं होंगे। समझदार न होंगे तो अनुयायी सिर्फ नासमझ ही हो सकते हैं। जिस दिन दुनिया समझदार होगी और अनुयायी नहीं होंगे। महावीर को लोग पढ़ेंगे, समझेंगे; बुद्ध को पढ़ेंगे, समझेंगे; लेकिन कोई किसी का अन्धा अनुयायी न होगा, उस दिन मेरे जैसे आदमियों को बड़ी सुविधा हो जायेगी। हमें महावीर बुद्ध की बात नहीं कहनी पड़ेगी, उनको बीच में लाने का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। उनसे आज भी कोई प्रयोजन नहीं है। आज भी प्रयोजन आपसे है, गांधीवादी से है, बुद्धवादी से है। यह जो वादी का चित्त है, यह वादी का चित्त कहता है, आपको जो कहना हो वह आप कहो, हमारे वाद को मत छेड़ो, हमारे गुरु को मत छेड़ो। हमने उसको गुरु समझ रखा है, गुरु तो मर चुका, उसको हमारे छोड़ने की कोई जरूरत नहीं। हम तो गुरु मारने जा नहीं रहे, वह हमारे बिना ही मर गया। हम इसे छेड़ने जा रहे हैं, लेकिन अगर इसका गुरु न छेड़ा जाये तो इसका आदमी नहीं छोड़ता। यह अपने दरवाजे पर गुरु को खड़ा किये हुए है। यह अपने दरवाजे पर झंडे लगाये हुए है गुरु के। यह कहता है, इस झंडे को नमस्कार, और यह इसका सुरक्षा कवच है। यह झंडा उतारना पड़ेगा, यह लड़ाई लड़नी पड़ेगी।

मेरी अपनी जो दृष्टि है, वह यह है कि व्यक्ति का आमूल जो रूपांतरण है, उस आमूल रूपांतरण में उसकी विचार की प्रक्रिया से, उसके वाद के ढंग से, उसकी आइडियोलॉजी से, उसकी पकड़, वह जो क्लिगिंग है उसकी, उसको तोड़ना पड़े। अगर हम किसी तरह अपरूट नहीं कर पाते हैं उसकी जड़ों से तो हम उसे नयी जड़ों पर नहीं ले जा सकते। उसका कोई

उपाय नहीं है और इसलिए वक्त मेरी बात में हमेशा देर लगने वाली है। देर लगेगी स्वभावतः।

प्रश्न—एक छोटा-सा प्रश्न है—कहां पर उसका जजमेंट, कैसे निकालना कि अगर आप कुछ कहते हैं तो मैं कुछ कहूं कि किसी ने भी कहा—तो एक ओर कह सकते हैं कि गांधी-वादी, या तो विनोबावादी या समाजवादी, यह आत्मरक्षा का प्रबन्ध है। तो कोई आपके लिए भी ऐसा कह सकता है कि वह रजनीश जी की आत्मश्लाघा है, प्रशंसा है ?

मैं कहता नहीं कि हम जजमेंट लगायें या हम अलग करें या उस चिन्ता में पड़ें। इसीलिए मैं कहता हूं कि अगर मैं किसी दिन किसी के पास पूछने जाऊं कि मुझे शांति चाहिए, मुझे आनन्द चाहिए, मुझे सत्य चाहिए, तब यह सवाल उठता है। वह जो महावीरवादी है, अगर उसकी आत्मरक्षा का उपाय नहीं है और महावीर से उसने कुछ पा लिया है, तब उसकी खोज बन्द हो जानी चाहिए। लेकिन मैं मानता हूं, वह है महावीरवादी, आया है मेरे पास। मैं उसके पास नहीं गया। यानी अगर मैं आत्मश्लाघा में जी रहा हूं तो यह मेरा सवाल है, इसमें किसी को क्या लेना-देना है।

वह महावीरवादी आया मेरे पास··· अभी एक जैन मुनि मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि मैं आचार्य तुलसी का दीक्षित साधु हूं, ध्यान सिखाइए। मैं उनको कहता हूं, आचार्य तुलसी से क्या सीखा, दीक्षा किसलिए दी ? और दीक्षा दे दी और ध्यान भी नहीं आया तो दीक्षित हुए कैसे ? अब यह बड़े मजे की बात है सीधी तो बात यह है कि अगर महावीर से कुछ मिल गया है तो मेरे पास आने का कोई अर्थ ही नहीं है, बात खत्म हो गयी। अगर गांधी से मिल गया है तो मजा करो, इसमें कुछ लेना-देना नहीं है, लेकिन मिला नहीं है। खोज

जारी है । लेकिन फिर कहते हो, गांधी को पकड़े रहूंगा। नहीं, मैं गांधी को छोड़वाऊंगा । क्योंकि जिससे नहीं मिला है, कृपा करके उसको छोड़ो । मिल गया हो तो मैं नहीं कहता।

इसलिए मेरा जो निरन्तर ख्याल है, वह इतना ही है कि नहीं मिलता जहां से, वहां भी हम पकड़े रहना चाहते हैं । फिर मुझसे भी यही चाहते हैं कि मैं भी उसमें थोड़ा एडीशन बन जाऊं । यानी मजेदार है मामला न, वह मुझसे भी कुछ सीखकर जायें, समझकर जायें । वह भी गांधीवाद में एडीशन होने वाला है । इसलिए अगर यह मेरी आत्मश्लाघा है—हो सकती है, तो यह मेरा नर्क बनेगी । अगर यह आपकी आत्म-रक्षा है तो यह आपका नर्क बनेगी । और हमें सोच लेना चाहिए कि हम क्या बना रहे हैं उसको और यह इतनी निपट वैयक्तिक है बात कि इसके लिए निर्णय का कोई उपाय भी नहीं है । इसलिए हो सकता है, मैं सिर्फ अपने को, सबको धोखा दे रहा हूं, लेकिन तब इसका दुख और पीड़ा मेरी है, इसकी दुख और पीड़ा किसी की भी नहीं है । यानी इससे कुछ खो रहा हूं, जो मुझे गांधी के पकड़ने से मिल सकता था तो मैं उसे खोने को तैयार हूं, उसमें कोई कठिनाई नहीं है । मुझे महावीर को पकड़ने से जो शांति मिल सकती थी, वह मुझे लेने की इच्छा नहीं है। और अगर मैं अशांत हूं तो यह ज्यादा दिन आत्मश्लाघा चल नहीं सकती । क्योंकि अगर आप भी अपनी अशांति से परेशान होंगे, मैं नहीं होऊंगा ? आप अपने दुख से पीड़ित होंगे, मैं अपने दुख से पीड़ित नहीं हूं ? आप तो अपना नर्क मिटाने की कोशिश में लगे हैं, मैं अपना नर्क बनाता रहूंगा ? कितनी देर तक यह चलेगा ? यह कैसे चल सकता है ? यह असम्भव है। तो निरन्तर सवाल उठता ही है—जो लोग भी सोचते हैं— उठेगा ही ।

और मेरा मानना यह है कि इसके निर्णय की हमें जरूरत ही नहीं है । यह तो हमारे अपने सोचने की बात है । मैं जो पकड़े हुए हूं, उससे अलग मुझे कुछ मिलता हो तो बात खत्म हो गयी । अगर नहीं मिल रहा है तो मैं कहता हूं कि कृपा कर इसे छोड़ो, इसके पहले कि कुछ और तुम्हारी जिन्दगी में उतर सके, तुम इसे छोड़ो । और उसे छोड़ो, क्योंकि लड़ाई ही कष्टपूर्ण बनती है । और जब मैं देखता हूं कि आप छोड़ने को भी तैयार नहीं हैं तो मैं मानता हूं कि नये को पाने की सामर्थ्य आपकी नहीं हो सकती है । इसलिए मैं उधर से हिसाब ही छोड़ देता हूं । उचित यह है कि मैं एक जगह कुआं खोदने गया हूं, उसमें मैं कुदाली मारकर देख रहा हूं कि अगर पत्थर ही है सामने, और कुदाली पत्थर पर ही पड़ती है, तो बेहतर है कि मैं उस जगह को छोड़ दूं, इतनी मेहनत क्यों करूं ? अन्यथा जो आप कह रहे हैं अगर उस तरह किया जाये तो मुझे अकारण, फिजूल लोगों पर मेहनत करनी पड़ेगी । ये वे लोग होंगे जो बदलना नहीं चाहते और जिनको मैं बदलने की कोशिश करता हूं ।

अभी तो यह मुझे धीरे-धीरे साफ होता चला जाता है कि इस भांति सहज ही वे भी लोग मेरे पास आ पाते हैं, जिनकी बदलने की आतुरता है, जिनमें बदलने का साहस है और जो कुछ भी छोड़ने को तैयार हैं । क्योंकि जो कुछ विचार ही छोड़ने को तैयार नहीं है, वे कुछ और छोड़ पायेंगे, यह बहुत मुश्किल मामला है । क्योंकि विचार से ज्यादा बेकार चीज कुछ और है नहीं, यानी सिर्फ शब्द ही शब्द हैं । उसको भी छोड़ने में जो आदमी घबरा रहा है, वह कुछ और सब्सटेंस छोड़ पायेगा किसी दिन इसकी आशा बांधनी बहुत मुश्किल है । तो मेरे लिए वह परीक्षा का उपाय भी बन गया । यानी मैं तो मानता

यह हूं कि उसमें छंट जाते हैं जो लोग, वे ही लोग बच जाते हैं, जिनके साथ मेहनत करनी ठीक है। और मैं सब तरह से उनको छांटता ही रहता हूं, क्योंकि अकारण हर आदमी पर मेहनत करने की मेरी उत्सुकता नहीं है। क्योंकि आखिर मेरी सीमाएं हैं—सबकी सीमाएं हैं। सारी दुनिया को मैं बदल नहीं सकता। सारी दुनिया को बदलने का ख्याल भी नहीं करना चाहिए। जितनी मेरी शक्ति है वह अधिकतम उपयोग में आ जाये, यह मेरा ख्याल है।

इस मामले को—यह एक अर्थ में सनातन है बहुत। और यह हममें उठ रहा है और सदा उठेगा। क्योंकि आसान मेरे लिए भी वही है कि मेरे लिए भी लाख आदमी सुन सकते हैं। अगर मैं उनके अहंकारों की किसी तरह से तृप्ति कर रहा हूं या तृप्ति नहीं कर रहा हूं, सिर्फ चोट ही नहीं पहुंचा रहा हूं, इतनी ही तृप्ति कर रहा हूं तो मुझे लाखों लोग सुन सकेंगे। लेकिन मैं लाखों लोगों को सुनाकर भी क्या करूंगा? मैं दस आदमियों को सुनाना पसन्द करूंगा, जो कि बदलने के लिए तैयार हैं। ये लाख आदमी सुनकर ताली बजाकर चले जायेंगे, इससे क्या होने वाला है। वह रोज चल रहा है। इधर मेरी अपनी समझ यह है, जैसे गांधीजी ने पूरा प्रयोग किया है वही करूं, जो यह सलाह मुझे मित्र देते हैं—गांधीजी ने पूरी जिन्दगी वही किया और 'अल्ला ईश्वर तेरे नाम' को भी इकट्ठा कर लिया और 'गीता कुरान' को भी इकट्ठा कर लिया। मुसलमान को भी बदल दें, हिन्दू को भी बदल दें, ईसाई को भी बदल दें—सबको तृप्ति भी दे दें कि तुम्हारी किताब में भी वही है, तुम्हारी किताब में वही है, किसी के खिलाफ न बोलें, सबके पक्ष में बोलें—यह पूरी जिन्दगी प्रयोग किया। मैं नहीं मानता हूं कि दस बीस आदमी की जिन्दगी

भी बदल पाये। खुद की भी बदल पाये, यह भी मैं नहीं मानता हूं। क्योंकि मेरा ख्याल यह है कि अगर वे खुद को भी बदल पाते तो यह बात बहुत साफ हो जाती कि जो गोरख धन्धा वे कर रहे हैं, यह सम्भव नहीं है।

ये महावीर और बुद्ध और क्राइस्ट नासमझी नहीं किये हैं। ठीक जो हो सकता था वही किये। नहीं तो बुद्ध भी कह सकते थे कि महावीर भी वही कहते हैं, उपनिषद भी वही कहते हैं, गीता भी वही कहती है, सभी वही कहते हैं, जो मैं कहता हूं। इसमें हर्ज क्या था कहना। यह बराबर कहा जा सकता था। लेकिन मैं मानता हूं कि बुद्ध शायद लाख दो लाख लोग, दस लाख लोग उनको सुन लेते थे, लेकिन आपको नाम भी ख्याल में नहीं आता है बुद्ध का। लेकिन कुछ लोगों को। उन्होंने बदला और बदले हुए लोग ही काम के हैं। हर आदमी काम पड़ता नहीं। उसे कुछ मतलब भी नहीं। तो मेरी उत्सुकता किसी तरह के नेतृत्व में नहीं है और किसी तरह से परसुएशन में नहीं है। सीधी, साफ ऑनेस्ट बात होनी चाहिए। मुझे जो लगता है कि आप गलत हैं तो मैं पूरी चोट से कहूंगा। और मैं मानता हूं कि जब अगर आप किसी तरह की आत्म-रक्षा की उपाय में नहीं गये आप समझ पायेंगे। अगर लगे हैं तो जल्दी आपसे मेरा छुटकारा होगा। ज्यादा समय आप मेरा जाया नहीं करेंगे।

अभी यह देखें न क्या हुआ, मुझे जो गांधीवादी वर्षों से सुनता था, अब मैं मानता हूं, उसने मुझे कभी नहीं सुना। क्योंकि मुझे वह वर्षों से सुनता था, कैम्पों में आता था, ध्यान के लिए बैठता था। मैं गांधी के खिलाफ बोला तो वह भाग गया। अब मैं सोचता हूं वह जो कई वर्ष मैंने उसके साथ मेहनत की, वह बेकार गयी। मुझे गांधी के खिलाफ पहले ही

बोल देना था। मेरे अपने तोड़ने के ढंग हैं, इसलिए मैं मानता हूं कि मेरा समय व्यर्थ गया। क्योंकि वे आदमी तो भाग गये। और वर्षों ध्यान करके और वर्षों मुझे सुन करके भी वह इतनी हिम्मत न जुटा पाया कि इतनी आलोचना सह लेता, तो वह बेकार समय जाया हुआ। मैं और वर्षों उसको सुना सकता था, गांधी के खिलाफ भर नहीं बोलता तो। वह भी समय जाया होने वाला था। इधर मेरी अपनी यह समझ है, मेरा मानना ऐसा है कि जो आदमी बदलने की तैयारी पर खड़ा है, वह आदमी सब तरह की चोट झेलने की तैयारी पर भी खड़ा होता है।

प्रश्न—जिनको आप मानते हैं कि गांधी की बात की तो वे लोग चले गये, वैसा भी है—शायद कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई चोट ऐसी लगती है, ठीक से अगर लग गयी तो मैं चल सकता हूं। लेकिन अगर यह मुझे लग गयी तो मुझे पांच-दस मिनट कुछ ठहरना पड़ेगा। तो ऐसा नहीं कि मैं छोड़ गया ?

वह अगर लौट भी जायेंगे तो मैं मानता हूं कि वे पहले से ज्यादा हालत में होंगे, क्योंकि जब वे लौटेंगे तो वे इस बात को जानकर ही लौटेंगे कि मैं उसे चोट पहुंचा सकता हूं। अब मेरे बाबत वे साफ लौटेंगे तो भी हितकर होगा। वे दूसरे आदमी होकर लौटेंगे। अगर वे लौटते भी हैं—कुछ लौटे भी हैं बहुत से—तो अब वे एक बात साफ करके लौट रहे हैं कि मैं किसी तरह से उनको परसुएट करने में उत्सुक नहीं हूं और मैं मानता हूं, अन्त में यह बल मिलेगा। अगर मैं आपको किसी तरह परसुएट नहीं कर रहा और किसी तरह आपमें इस तरह की उत्सुकता नहीं ले रहा कि किसी भी हालत में आपको राजी हो जाऊं तो मैं मानता हूं, मेरे और

आपके बीच ज्यादा सिसीयर सम्बन्ध पैदा होंगे। क्योंकि एक तरह का धोखा ही है वह। अगर मैं गांधी के खिलाफ में हूं और नहीं बोल रहा, तो भी धोखा ही दे रहा हूं। अगर एक आदमी मेरे पास आता है और मैं कुरान के खिलाफ हूं और यह देखकर कि चूंकि वे मुसलमान हैं, इसलिए कुरान के खिलाफ नहीं बोलता, तो भी मैं धोखा दे रहा हूं। और उसके सम्बन्ध में कभी ऑनेस्ट नहीं हो सकता। मैं जो हूं, वह साफ है।

तो अब तो धीरे-धीरे ऐसी स्थिति बना लूंगा दो साल में कि मैं जैसा हूं वैसा साफ हूं—बुरा-भला, जैसा। आप आते हैं तो सब जानकर आते हैं, इसलिए आपके लौटने का उपाय कम हो जायेगा। अभी पीछे दिक्कत थी। लौट जाने का डर सदा बना रहता था। वह कठिनाई उसकी है। अगर वह मिटा लेता हूं बिल्कुल तो उसमें सीधा-साफ मामला हो जायेगा। आप जानकर आते हैं कि मैं ऐसा आदमी हूं। मेरे साथ दो घण्टे अगर बैठना है तो यह सब संभावना है। तो मैं मानता हूं कि हम कुछ काम कर पायेंगे और सम्बन्ध हार्दिक हो पाता है। और नहीं तो नहीं हो पाते हैं। और छोटे से छोटे लोगों से नहीं, बड़े से बड़े लोगों के साथ ऐसी हालत है।

एक बड़े संत अपने आश्रम में रोज मेरी किताबों का पाठ करते थे वर्षों से और बैठकर सारे शास्त्रों को समझाते थे। गांधी पर बीच में बोला तो वे सब किताबें वहां से हटा देते थे। किताबें वही हैं। उनमें कोई फर्क नहीं कर दिया है। मजा, मैं गांधी के विपरीत बोला, तो इसलिए सारा गड़बड़ हो गया। अब वह मामला है कि अच्छा ही हुआ कि वह नाहक ही मेहनत कर रहे थे तो वे मेरी किताब नहीं समझ पायेंगे, वह भूल-चूक की बात चल रही थी। तो कठिनाई तो

है ही इसमें। लंबा भी वक्त लेती है यह बात, लेकिन थोड़ा-सा भी जो काम हो पायेगा, वह होगा। लगेगा कि काम नहीं हो पायेगा। फैलाव बहुत दिखेगा, कुछ हो नहीं पायेगा। उससे कुछ निकलेगा भी नहीं।

प्रश्न—व्यक्ति के ढंग से अगर देखा जाये तो आखिर में उद्‌देश्य क्या है ? और समष्टि की दृष्टि से देखा जाये तो इनका मकसद क्या है ? आप अल्टीमेटली कहां जाना चाहते हैं।

दोनों दृष्टि से एक ही बात है। व्यक्ति की दृष्टि से भी, समाज की दृष्टि से भी। व्यक्ति के हित में सम्भावना है आनन्द पाने की। वह प्रगट नहीं हो पायेगी, नहीं हो पा रही है। कभी इक्के-दुक्के आदमी में प्रगट हुई है। बड़े व्यापक पैमाने पर वह प्रगट नहीं हुई है। और उसकी जो आनन्द की संभावना प्रगट न हो तो वह जिस समाज को निर्मित करता है, वह भी दुख का ही समाज होता है। इसलिए मेरे लिए तो एक ही है दोनों के पीछे कि व्यक्ति अधिकतम आनन्द को कैसे उपलब्ध हो। जिस रास्ते से मुझे लगता है कि आनन्द है, जिस रास्ते से मुझे आनन्द मिलता है, वह मैं आपसे कह देना चाहता हूं। अपेक्षा बिल्कुल नहीं है उसमें कि आप उसको मानें ही। मेरा कर्त्तव्य पूरा हो जाता है। मुझे अगर दिखायी पड़ रहा है कि जिस जगह मैं खड़ा हूं वहां रोशनी दिखायी पड़ती है। और अगर आप दो इंच हट जायें अपनी जगह से तो इतनी रोशनी के मालिक हो सकते हैं। तो मैं दो इंच आपको हटाने की कोशिश कर रहा हूं। इसमें भी आप पर मेरी दया नहीं है। इसमें भी आनन्द बंटने से मुझे आनन्द मिलेगा, उतनी ही बात है। आप पर कोई करुणा नहीं, आपसे कुछ लेना देना नहीं। इधर

मेरा अनुभव ऐसा है कि आनन्द मिले, तब तो आनन्द मिलता ही है, जब हम उस आनन्द को बांटे तो वह करोड़ गुना हो जाता है। तो मैं अपने आनन्द को करोड़ गुना कर रहा हूं। कितने ज्यादा लोगों को वह मिल सकेगा, उतना ज्यादा मुझे मिल जायेगा। और अल्टीमेट का कोई ख्याल नहीं है। 'अभी' पर मेरी सदा नजर है। यानी मेरा मानना है, अभी मिल सकता है, जरा से अन्तर की जरूरत है जहां आप खड़े हैं, वहां से शायद थोड़ा ही रुख बदलने की बात है और वह आपको मिल सकता है।

तो जितने लोग मेरे निकट आयेंगे उनको मैं वह कहता चला जाऊंगा। अगर वे राजी होंगे तो उनको घुमा कर खड़ा करने के लिए तैयार हूं। मैं उनको घुमाकर उस तरफ रुख कर दूं, जहां रोशनी मुझे मालूम पड़ती है। जिस तरफ उन्होंने आदतवश ही कभी देखा नहीं है। इससे मुझे आनन्द मिल रहा है। इससे आपको मिलेगा, नहीं मिलेगा, ऐसा मुझे पक्का नहीं है। मैं आपको घुमा भी पाऊंगा, यह भी जरूरी नहीं है। लेकिन मैंने आपको घुमाने की कोशिश की, उससे भी आनंदित हूं और व्यक्ति बदले तो मेरे लिए समाज भी बदलता है।

बम्बई, दिनांक १० सितम्बर १९७०

श्री रजनीश आश्रम

यह आश्रम जीवन की प्रयोगशाला है। यहां जीवन बनाये और बदले जा रहे हैं, यहां आत्मा के विस्फोट के प्रयोग हो रहे हैं। भगवान श्री ने कहा है—'मैं यहां एक प्रयोग करने को उत्सुक हूं। जो मुझे हुआ है, चाहता हूं, तुम्हें भी हो जाये। हो सकता है। तुम्हारे भीतर पड़े बीज को देखता हूं। तुम्हारी क्षमता को देखता हूं। तुम्हारी गरिमा को देखता हूं। और यह भी देखता हूं कि तुम्हें इसका कुछ पता नहीं है।'

'मैं नहीं चाहता कि तुम बौद्ध हो जाओ, मैं चाहता हूं तुम बुद्ध हो जाओ। मैं नहीं चाहता कि तुम जैन हो जाओ; मैं चाहता हूं तुम जिन हो जाओ। मैं नहीं चाहता कि तुम क्रिश्चियन हो जाओ; मैं चाहता हूं तुम क्राइस्ट हो जाओ।'

आश्रम का दैनिक कार्यक्रम

श्री रजनीश आश्रम की पहली विशेषता है कि वहां भगवान स्वयं विराजते हैं। दूसरी विशेषता यह है कि वहां प्रति दिन प्रातः आठ से साढ़े नौ बजे तक भगवान श्री की प्रवचन गंगा-प्रवाहित होती है। और तीसरी कि संध्या सात से साढ़े आठ तक साधकों और संन्यासियों के छोटे समूह को भगवान श्री का निकट से दर्शन उपलब्ध होता है, जिसमें वे नये मुमुक्षुओं को संन्यास में दीक्षित करते हैं तथा पुराने साधकों को साधन-सम्बन्धी कठिनाइयों का समाधान भी देते हैं। आश्रम की एक और विशेषता है कि प्रति माह दस दिवसीय समाधि साधना शिविर का आयोजन होता है—११ से २० तारीख तक। शिविर में रोज पांच ध्यान कराये जाते हैं।

भगवान श्री बारी-बारी से एक महीना हिन्दी में बोलते हैं और एक महीना अंग्रेजी में।

शिविर के दिनों के अलावा दैनिक कार्यक्रम इस प्रकार रहता है—

प्रातः ६.००—७.०० सक्रिय ध्यान

प्रातः ८.००—१०.०० प्रवचन

संध्या ५.३०—६.३० कुंडलिनी ध्यान

संध्या ७.००—८.३० दर्शन

नोट—प्रभु श्री का सांध्य-दर्शन मात्र नये मित्रों की संन्यास-दीक्षा और साधकों के ध्यान-मार्ग दर्शन के लिए ही है। दर्शन के लिए सचिव मा योग लक्ष्मी से मिलकर पहले से ही तिथि निश्चित करवानी आवश्यक है।

सक्रिय ध्यान

एक घण्टे के इस ध्यान में पांच चरण हैं। पहले तीन चरण दस-दस मिनट के हैं और अन्तिम दो चरण पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के। पूरा ध्यान खड़े होकर करना है।

पहला चरण—आंखें बन्द कर लें, अच्छा हो कि आंख पर पट्टी लगा लें। फिर नाक से तेज और गहरी सांस लेना शुरू करें। सांस की गहराई की बजाय उसकी तेजी पर, वैसे ही सांस भीतर लेने की बजाय उसे बाहर फेंकने पर ज्यादा बल दें। सांस की गति के साथ शरीर गति करे तो करने दें। दस मिनट के लिए सांस ही सांस हो जाएं। पूरी शक्ति लगा दें।

दूसरा चरण—तेज सांस लेने के कारण सक्रिय हो गये भावावेगों को शरीर से प्रगट होने दें। शरीर को पूरा पागल होने दें। यह रेचन का चरण है। अतः नाचें, गाएं, चिल्लाएं। जहां सुविधा न हो वहां आवाज न करें।

तीसरा चरण—बांहों को ऊपर उठा लें और पंजों के बल

उछलना शुरू करें और उसके साथ ही 'हू—हू—हू' की ध्वनि से भीतर चोट करें। मुंह खुला रहे, लेकिन 'हू' की आवाज को बाहर जाने देने से अधिक अन्दर चोट करने दें। अपनी पूरी ताकत लगा दें। जहां सुविधा न हो वहां हू—हू की आवाज बाहर न करें।

चौथा चरण—जैसे ही स्टॉप या रुकने की आवाज सुनें, वैसे ही जहां हो, जैसे हों—अचानक उसी मुद्रा में रुक जायें, जम जाएं—निश्चल और शांत। जाग गई ऊर्जा को भीतर काम करने दें—बिना बाधा के। विचार उठें तो उन्हें भी साक्षी-भाव से देखें।

अन्तिम चरण—ध्यान से प्राप्त आनन्द और अहोभाव को नाचकर और उत्सव मानकर व्यक्त करें।

कुंडलिनी ध्यान

पहला चरण—आंखें बन्द रखें, अथवा चाहें तो खुली भी रख सकते हैं। खड़े होकर पूरे शरीर को एड़ी से चोटी तक कंपने और हिलने दें। अंग-अंग को उस कम्पन में खुलकर भाग लेने दें और आप कम्पन ही हो जाएं।

दूसरा चरण—पहले चरण के कम्पन से जो ऊर्जा जागे उसे अब पन्द्रह मिनट नाच के द्वारा व्यक्त करें। इस नृत्य में पूरे शरीर को भाग लेने दें, नाच में डूब जाएं।

तीसरा चरण—बैठ जाएं या खड़े रहें। लेकिन बिल्कुल स्थिर और मौन हो जाएं।

चौथा चरण—अब लेट जाएं और पूरे विश्राम और मौन में उतरें।

नाद ब्रह्म ध्यान

साठ मिनट के ध्यान में तीन चरण हैं। पहला चरण तीस मिनट का है तथा दूसरा और तीसरा चरण पन्द्रह-पन्द्रह मिनट

के हैं। लेकिन दूसरा चरण साढ़े सात-साढ़े सात मिनट के दो भागों में बंटा है।

पहला चरण—आंखें बन्दकर सुखपूर्वक बैठ जाएं और होठों को भी बन्द रखें। अब भौंरे की भांति हूं SSS का गुंजार करें—इतनी तेज आवाज में कि आपके पड़ोस में बैठे व्यक्ति को भी वह सुनाई पड़े। इस हूं SSS की ध्वनि से पूरे शरीर को तरंगायित होने दें। यदि शरीर कुछ गति करे तो उसे भी होने दें। भाव करें कि शरीर एक बांस की पोंगरी है, जिसमें हूं SSS की तरंगें गूंज रही हैं। एक ऐसा क्षण आयेगा कि गुंजन आप ही होने लगेगा और आप श्रोता रह जाएंगे।

दूसरा चरण—(पहले साढ़े सात मिनट) अब अपने दोनों हाथों को पेट के आगे बड़ाकर बाहर की ओर वृत्ताकार गति से घुमाएं। हथेलियों को आकाशोन्मुख रखें तथा दायें हाथ को दायीं ओर और बांये हाथ को बायीं ओर घुमायें। वृत्त को धीरे-धीरे बड़ा करते जाएं हाथों की गति अत्यन्त धीमी और प्रसाद-पूर्ण हो। भाव करें की ऊर्जा बाहर जा रही है। (दूसरे साढ़े सात मिनट) अब हथेलियों को उलट कर जमीनोन्मुख कर दें तथा हाथों को विपरीत दिशा में, भीतर की ओर, वृत्ताकार गति करने दें। गति अत्यन्त धीमी और प्रसादपूर्ण हो। और ऐसा भाव करें कि ऊर्जा अन्दर आ रही है।

तीसरा चरण—हाथों की गति बन्द कर बैठे रहें या लेट जाएं तथा शांत और स्थिर और मौन रहें।

विपश्यना ध्यान

यह ध्यान पचास मिनट का है, और बैठकर करना है। सुख-पूर्वक बैठें, शरीर और मन को तनाव न दें और आंखें बन्द रखें। फिर अपने ध्यान को आते-जाते श्वास पर केन्द्रित करें। श्वास को किसी तरह की व्यवस्था नहीं देनी है, उसे उसके

सहज ढंग में चलने दें। सिर्फ ध्यान को उसकी यात्रा के साथ कर दें।

श्वास की यात्रा में नाभि-केन्द्र के पास कोई जगह है, जहां वह अधिक महसूस होता है। वहां विशेष ध्यान दें, पर श्वास पर ही ध्यान दें। अगर बीच में ध्यान कहीं चला जाए तो उससे घबराएं न। अगर मन में कोई विचार या भाव उठे तो उसे भी सुन लें, लेकिन फिर-फिर प्रेमपूर्वक ध्यान को श्वास पर लाएं।

नटराज ध्यान

परमात्मा नटराज है, यह सृष्टि उसका नृत्य है और वह नर्तक की नाईं अपने नृत्य में समाया हुआ है। नटराज-नृत्य एक सम्पूर्ण ध्यान है।

यह ध्यान पैंसठ मिनट का है और इसके तीन चरण हैं। पहला चरण चालीस मिनट का, दूसरा बीस मिनट का, और तीसरा पांच मिनट का है।

पहला चरण—संगीत की लय के साथ-साथ नाचें, और नाचें, बस नाचें। पूरे अचेतन को उभरकर नृत्य में प्रवेश करने दें। इसमें साक्षी को, द्रष्टा को, सब को भूल जाएं, बस नृत्य ही हो जाएं।

दूसरा चरण—लेट जाएं। नृत्य से पैदा हुई सिहरन को अपने सूक्ष्म तलों तक प्रवेश करने दें—पूरे विश्राम में।

तीसरा चरण—पुनः खड़े होकर उत्सव मनाएं, प्रमुदित हों।

गौरी शंकर ध्यान

गौरी शंकर ध्यान में पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के चार चरण हैं।

पहला चरण—सुखपूर्वक बैठें और आंखें बन्द कर लें। नाक से श्वास भीतर ले जाएं और पूरे फेफड़े को भर जाने दें। उस

श्वास को भीतर ही रोके रहें, जब तक सहजता से रोक सकें। फिर धीरे-धीरे मुंह से श्वास को बाहर निकालें, बिल्कुल निकाल दें। श्वास के बिना जितनी देर फेफड़े को खाली रख सकते हों, रखें। फिर धीरे-धीरे नाक से श्वास को भीतर लें। यह क्रम पन्द्रह मिनट तक जारी रखें।

दूसरा चरण—अब आंखें खोल लें और श्वास-प्रश्वास को सामान्य हो जाने दें। फिर सामने हिलते हुए प्रकाश को देखें। इस देखने में कोई तनाव न हो, न एकाग्रता ही। दृष्टि को सहज और शिथिल रखें।

तीसरा चरण—खड़े होकर आंखें बन्द कर लें और शरीर को शिथिल और ग्राहक हो जाने दें। अब आपके भीतर प्रवाहित होने वाली सूक्ष्म ऊर्जा-तरंगें आपके शरीर को गति देने लगेंगी। उस पर (लातिहान) आपका वश नहीं होगा, लेकिन आप उसके साथ सहयोग करें।

चौथा चरण—अब बैठें या लेट जाएं और स्थिर एवं शांत रहें।

रजनीश बुक क्लब

आप भी तो जानना चाहते हैं…
कौन हैं भगवान श्री रजनीश…?
लीजिये प्रस्तुत है

भगवान रजनीश का बहुमूल्य साहित्य
किफायती दामों पर

दस पुस्तकें खरीदिये
१९८० की सुन्दर डायरी और केलेण्डर के साथ, और दस पुस्तकें मुफ्त लीजिये।

भगवान स्वयं यहां मौजूद हैं और पूछते हो ईश्वर कहां है? सत्य ही यहां आविर्भूत हुआ है और कहते हो उसे खोजना है? आनन्द का सागर यहां हिलोरें ले रहा है और चिल्लाते हो दुख से छुटकारा कैसे पाएं?

पहले ही हो चुकी है देर, अब और विलम्ब न करें!!

सुन लिया बहुत परमात्मा के बारे में, अब स्वयं देख लें कैसे मनुष्य मिटकर भगवान होता है!

बहुत मान ली पंडित-पुरोहितों की, अब जान लें स्वयं बुद्ध-पुरुष द्वारा भगवत्ता कैसे मानव-देह में प्रगट होती है!

हो चुकी बहुत पूजा-अर्चना मंदिरों में, अब समझ लें कैसे मानव स्वयं ही परमात्मा का मंदिर बन सकता है!

भगवान श्री रजनीश का आलोक फैल रहा है सभी दिशाओं में, उनकी ज्योतिर्मय वाणी बदल रही है अंधियारे को उजियाले में, उनके अमृत वचनों को पीने की प्यास बढ़ रही है देश-विदेश में।

अवसर आपको भी मिल रहा है—न चूकें
रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड द्वारा प्रस्तुत है…
'रजनीश, बुक क्लब'

बुक क्लब का उद्देश्य है क्लब के सदस्यों को भगवान श्री की पुस्तकें विशेष छूट के साथ उपलब्ध कराना।

बुक क्लब की इस योजना में सदस्य होने के लिए हम आपको प्रेमपूर्वक आमंत्रण देते हैं, और साथ ही भेंट करते हैं एक अत्यंत विशिष्ट उपहार जो केवल सदस्यों के लिए है—आपको बुक क्लब के द्वारा जो पुस्तकें मिलेंगी वे कुल ४५ प्रतिशत के बराबर होंगी।

आप आने वाले वर्ष में प्रकाशित होने वाली पुस्तकों में से कोई भी दस नई पुस्तकें खरीदें; और मुफ्त में मौजूदा पुस्तकों में से दस पुस्तकें चुन लें।

क्लब की सदस्यता के अभिन्न अंग के रूप में आपके द्वारा दिये गये आर्डर में निम्नांकित चीजें भी मिलेंगी—

भगवान श्री रजनीश डायरी—१९८०—इस अति सुन्दर डायरी की रेशमी जिल्द पर सुनहरे अक्षर उभरे हैं। इसमें भगवान श्री के १२ दोहरे पृष्ठों के चित्र हैं। पूरी डायरी में भगवान श्री के चुने हुए सुभाषित भरे पड़े हैं। सुभाषित और डायरी की अन्य सामग्री श्रेष्ठतम खुशनवीसी /केलिग्राफी/ में छपी है। मूल्य रु. ५०.००

भगवान श्री रजनीश केलेण्डर—इस सुन्दर केलेण्डर में भगवान श्री के सीपिया / चाकलेट / रंग में सात चित्र हैं। इसमें भी सुभाषित और अन्य लेखों के लिए खुशनवीसी का उपयोग किया गया है। यह ११" १७" / २८, ४३ से. मी. के आकार में है।

मूल्य रु. १०.००

अगले वर्ष प्रकाशित होने वाली नई हिन्दी पुस्तकें निम्नांकित हैं—

	रुपये
गीता-दर्शन अ. ७–८	६५.००
अमी झरत, बिगसत कंवल	६०.००
हंसा तो मोती चुगें	५०.००
दरिया कहै सब्द निरबाना	६०.००
गीता-दर्शन अ. ९–१०	६५.००
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन	६०.००
गुरु-परताप, साध की संगति	५०.००
उत्सव आमार जाति, आनन्द आमार गोत्र	५०.००
सपना यह संसार	७५.००
मृत्योर्मा अमृतं गमय	५०.००

क्लब का सदस्य कैसे बना जाये

क्लब का सदस्य होने के लिए आपको उपर्युक्त दस किताबें तथा १९८० की डायरी और केलेण्डर खरीदने को सहमत होना है। सदस्यता शुल्क सात सौ रुपये है, जिसमें इन प्रकाशनों की कीमत और मौजूदा पुस्तकों की संलग्न सूची में से दस मुफ्त पुस्तकें सम्मिलित हैं। आपकी सदस्यता का शुल्क प्राप्त होते ही दस मुफ्त पुस्तकें आपको भेज दी जाएंगी। और दस नई पुस्तकें उनके प्रकाशित होने पर यथासमय भेजी जाएंगी। साधारणतः नये प्रकाशन श्री रजनीश आश्रम के तीन महोत्सवों के दिन ही घटित होते हैं—

११ दिसम्बर, १९७९—भगवान श्री का जन्म दिवस

२१ मार्च, १९८०—भगवान श्री का संबोधि दिवस

२६ जुलाई, १९८०—गुरुपूर्णिमा महोत्सव/आषाढ़ पूर्णिमा

डाक खर्च

सदस्यता शुल्क में डाकखर्च सम्मिलित नहीं है। पुस्तकों

की रवानगी पर इनवायस के जरिये इस खर्च की सूचना हम आपको दे देंगे। प्रति पुस्तक लगभग खर्च पांच रुपये है।

नोट—पहले भेजी गई पुस्तक का खर्च वसूल होने पर ही आगे पुस्तकें भेजी जाएंगी।

पुस्तकों की वापसी

यदि वे रास्ते में क्षतिग्रस्त न हों तो पुस्तकें वापस नहीं ली जाएंगी।

सदस्यता की समाप्ति

सदस्यता किसी भी समय समाप्त की जा सकती है। ऐसी स्थिति में, अभी तक जो भी किताबें आपको भेजी गई हों, जिनमें मुफ्त पुस्तकें सम्मिलित है, उनकी पूरी कीमत और डाकखर्च सदस्यता शुल्क से काटकर शेष रकम आपको वापस कर दी जाएगी।

पुस्तक-सूची

उपनिषद

१. सर्वसार उपनिषद ६०.००
२. कैवल्य उपनिषद ६०.००
३. अध्यात्म उपनिषद ७५.००
४. कठोपनिषद ७०.००

कृष्ण

५. कृष्ण : मेरी दृष्टि में नया संस्करण ६५.००
६. गीता-दर्शन अध्याय १, २ ६५.००
७. गीता-दर्शन अध्याय ३ ५०.००
८. गीता-दर्शन अध्याय ४, ५ ६५.००
९. गीता-दर्शन अध्याय ६ ६५.००
०. गीता-दर्शन अध्याय १० ५०.००
११. गीता-दर्शन अध्याय १२ ५०.००
१२. गीता-दर्शन अध्याय १३, १४ ८०.००
१३. गीता-दर्शन अध्याय १५, १६ ६०.००
१४. गीता-दर्शन अध्याय १७ ६०.००
१५. गीता-दर्शन अध्याय १८ १००.००

अष्टावक्र

१६. महागीता भाग—१ ६०.००
१७. महागीता भाग—२ ६०.००
१८. महागीता भाग—३ ६०.००
१९. महागीता भाग – ४ ६०.००
२०. महागीता भाग – ५ ६०.००
२१. महागीता भाग – ६ ५०.००
२२. महागीता भाग – ७ ५०.००
२३. महागीता भाग – ८ ५०.००
२४. महागीता भाग – ९ ५०.००

महावीर

२५. महावीर-वाणी भाग – ३ ८०.००
२६. जिन-सूत्र भाग – १ ८०.००
२७. जिन-सूत्र भाग – २ ८०.००
२८. जिन-सूत्र भाग – ३ ८०.००
२९. जिन-सूत्र भाग – ४ ६०.००

बुद्ध

३०. एस धम्मो सनंतनो भाग – १ ८०.००
३१. एस धम्मो सनंतनो भाग – २ ८०.००
३२. एस धम्मो सनंतनो भाग – ३ ८०.००
३३. एस धम्मो सनंतनो भाग – ४ ७५.००
३४. एस धम्मो सनंतनो भाग – ५ ७५.००
३५. एस धम्मो सनंतनो भाग – ६ ७५.००

लाओत्से

३६. ताओ उपनिषद भाग – १ ५०.००
३७. ताओ उपनिषद भाग – ३ ७५.००
३८. ताओ उपनिषद भाग – ४ ७०.००
३९. ताओ उपनिषद भाग – ५ ७५.००
४०. ताओ उपनिषद भाग – ६ ७५.००

प्रश्नोत्तर

४१. नहिं राम बिन ठांव ६०.००

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां

४२. बिन बाती बिन तेल ७०.००
४३. सहज समाधि भली ७५.००
४४. दीया तले अंधेरा ७५.००

मेबिल कॉलिन्स

४५. साधना-सूत्र ६०.००

ब्लावट्स्की

४६. समाधि के सप्त द्वार — ६०.००

नारद

४७. भक्ति-सूत्र भाग – १ — ५०.००

४८. भक्ति-सूत्र भाग – २ — ५०.००

शिव

४९. शिव-सूत्र प्रथम संस्करण — ५०.००

५०. शिव-सूत्र द्वितीय संस्करण — ४०.००

आदि शंकराचार्य

५१. भज गोविंदम् — ५०.००

ननका

५२. एक ओंकार सतनाम — ७५.००

कबीर

५३. सुनो भाई साधो — ५०.००

५४. गूंगे केरी सरकरा — ५०.००

५५. कस्तूरी कुण्डल बसै — ५०.००

५६. कहै कबीर दिवाना — ५०.००

५७. मेरा मुझमें कुछ नहीं — ५०.००

५८. कहै कबीर मैं पूरा पाया — ५०.००

दादू

५९. पिव-पिव लागी प्यास — ५०.००

६०. सबै सयाने एक मत — ५०.००

फरीद

६१. अकथ कहानी प्रेम की — ५०.००

सहजोबाई

६२. बिन घन परत फुहार — ५०.००

दयाबाई

६३. जगत तरैया भोर की — ५०.००

मीराबाई

६४. मैंने राम रतन धन पायो — ५०.००

६५. झुक आई बदरिया सावन की — ५०.००

मलूकदास

६६. कन थोरे कांकर घने — ५०.००

दरिया

६७. कानों सुनी सो झूठ सब — ५०.००

पलटू

६८. अजहूं चेत गंवार — ७०.००

चरणदास

६९. नहीं सांझ नहीं भोर — ५०.००

शांडिल्य

७०. अथातो भक्ति जिज्ञासा भाग – १ — ७०.००

७१. अथातो भक्ति जिज्ञासा भाग – २ — ७०.००

धरमदास

७२. जस पनिहार धरे सिर गागर — ५०.००

७३. का सोवै दिन रैन — ५०.००

रज्जब

७४. संतो, मगन भया मन मेरा — ६५.००

सुन्दरदास

७५. हरि बोलौ हरि बोल — ५०.००

७६. ज्योति से ज्योति जले — ६५.००

जगजीवन

७७. नाम सुमिर मन बावरे — ५०.००

७८. अरी, मैं तो नाम के रंग छकी — ५०.००

वाजिद

७९. कहै वाजिद पुकार

गोरख ५०.००

८०. मरौ हे जोगी मरौ

सरहपा-तिलोपा ७५.००

८१. सहज-योग

यारी ७५.००

८२. बिरहिनी मन्दिर दियना बार

दूलन ५०.००

८३. प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया ५०.००

(सदस्यता फार्म संलग्न है)

सदस्यता फार्म

नाम

....

पता

....

....

....

कृपया मुझे रजनीश बुक क्लब का सदस्य दर्ज कर लें। मैं सदस्यता की शर्तों को जानता हूं, और इसके साथ रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड के नाम सात सौ रुपये का बैंक ड्राफ्ट/बैंक चेक/मनीआर्डर (व्यक्तिगत चेक नहीं) भेज रहा हूं।

मैं अगले वर्ष प्रकाशित होने वाली और आपके द्वारा सूचित दस पुस्तकों, १९८० के केलेण्डर और डायरी, तथा मौजूदा प्रकाशनों में से दस मुफ्त पुस्तकों के पाने का हकदार हूं। कृपया ये दस पुस्तकें मुझे शीघ्र भेज दें तथा नयी पुस्तकें अगले वर्ष प्रकाशित होने पर भेजें। आपका इनवॉयस मिलने पर मैं डाकखर्च अदा कर दूंगा।

(पुस्तक सूची में प्रत्येक पुस्तक को नंबर दिया गया है। पुस्तक सूची में से आपने जिन नंबरों की पुस्तकें चुनी हैं उन नंबरों को निम्नांकित चौखानों में स्पष्ट रूप से दर्ज कर दें।)

मैंने जिन दस मुफ्त पुस्तकों को चुना है वे इस प्रकार हैं—

☐	☐	☐	☐	☐
१	२	३	४	५
☐	☐	☐	☐	☐
६	७	८	९	१०

मैं चाहता हूं कि मेरी पुस्तकें निम्नांकित ढंग से भेजी जायें—

(कृपया चिन्हित करें :) रजिस्टर्ड बुक पोस्ट ☐ वी०पी०पी० ☐

हस्ताक्षर.........................

रजनीश बुक क्लब, रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड,
१७, कोरेगांव पार्क, पूना—४११००१, महाराष्ट्र

डायरियां और कलेण्डर १६८०

पहली बार रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड तीन अद्‌भुत डायरियां और दो सुन्दर कलेण्डर पेश कर रहा है ताकि आप अपनी जरूरतों के अनुसार अपने लिए सर्वाधिक उपयोगी वस्तु का चुनाव कर सकें।

भगवान श्री रजनीश एक्जिक्यूटिव डायरी

सुन्दर अलंकृत, रेशमी जिल्द और उभरे हुए सुनहरे अक्षर। आकर्षक आकार ८½"×१०½"/१.५×२६.५ सेमी० प्रत्येक महीने के आरम्भ में भगवान श्री का एक पूरा द्विपृष्ठीय चित्र। प्रत्येक द्विमासीय अवधि पर सूफी, झेन, तंत्र आदि से चुनकर एक विशेष सूत्र दिया गया है। और इन सूत्रों पर भगवान श्री के चुने हुए ढेरों सुभाषित पूरी डायरी में भरे पड़े हैं। सुभाषित और डायरी के मूलपाठ के लिए सर्वोत्कृष्ट खुशनवीसी/कैलिग्राफी/का प्रयोग किया है।

एक अतिरिक्त उपहार—इस डायरी में एक ३२ पृष्ठ की पुस्तिका, जिसमें भगवान श्री तथा उनके कार्य की विस्तृत जानकारी है, संलग्न कर दी गई है। इस पुस्तिका में भी भगवान श्री के कई पूरे पृष्ठ के चित्र हैं।

पुनश्च: यह एक्जिक्यूटिव डायरी सिर्फ १००० की सीमित संख्या में छापी गई है।

मूल्य रु० ८०.००/–

भगवान श्री रजनीश डायरी

इस डायरी के निर्माण में वही शिल्प-कौशल अपनाया गया है जो एक्जिक्यूटिव डायरी में है। और उस डायरी की सभी आवश्यक विशेषताएं छोटे आकार में इसमें समाहित हैं।

इसका आकार सामान्य हार्ड बैक पुस्तकों वाला है—८½"× ५½"/२१.५×१४ सेमी०/यहां एक्जिक्यूटिव डायरी की पुस्तिका की जगह छह पृष्ठों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

मूल्य रु० ५०.००/–

भगवान श्री रजनीश पाकेट डायरी

सरल, आकर्षक और सुविधापूर्ण आकार वाली यह डायरी उपर्युक्त दो डायरियों की तरह ही रेशमी जिल्द पर उभरे सुनहरे अक्षरों से अलंकृत है। इसमें भगवान श्री के दो-दो पृष्ठ वाले १२ चित्र हैं।

मूल्य रु० १०.००/–

भगवान श्री रजनीश कलेण्डर

इस अत्यन्त सुन्दर और मोहक कलेण्डर में भगवान श्री रजनीश के सात सीपिया/चाकलेट/रंग के चित्र हैं। कलेण्डर में सर्वत्र कैलिग्राफी प्रयोग की गई है, जिसमें भगवान श्री के प्रवचनों से चुने हुए सुभाषित छपे हैं। इसका आकार ११"× १७"/२८×४३ सेमी०/है। घुमावदार तार की जिल्द।

मूल्य रु० १०.०० है।

भगवान श्री रजनीश बहुरंगी कलेण्डर

यह कलेण्डर बड़े आकार में है—१७½"×२२½"/४४½× ५७ सेमी०/ इसमें मोटे आर्ट पेपर पर भगवान श्री के सात बहुरंगी चित्र हैं। प्रत्येक चित्र एक निधि है और प्रत्येक सुभाषित एक ध्यान है।

मूल्य रु० ५०.०० है।

छूट

रजनीश ध्यान केन्द्रों को डायरियों पर ४०% और कलेण्डर पर १०% छूट दी जाती है। यही छूट व्यापारियों को भी उपलब्ध है जो सौ या उससे अधिक की संख्या में डायरी और कलेण्डर खरीदेंगे। ५० से अधिक डायरी या कलेण्डर लेने पर ३०% छूट दी जायेगी। डाक खर्च सहित मूल्य आर्डर फार्म पर दिये गये हैं।

आर्डर फार्म

नाम...

पता...

....

....

....

कृपया निम्मांकित प्रकाशन रजिस्टर्ड बुकपोस्ट/वी०पी०पी० से भेजें।

(नोट—१. बड़े आर्डर की चीजें पैसेंजर गाड़ी या रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जा सकती हैं।
२. ५० रु० से अधिक की डायरी लेने पर डाक-खर्च मुक्त।)

प्रतियों की संख्या		डाक खर्च सहित हर प्रति का मूल्य	भेजने का खर्च	कुल खर्च
	भगवान श्री रजनीश एक्जिक्यूटिव डायरी			
	भगवान श्री रजनीश डायरी			
	भगवान श्री रजनीश पॉकेट डायरी			
	भगवान श्री रजनीश कलेण्डर			
			कुल	

मैं रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड के नाम बैंक ड्राफ्ट/मनी-आर्डर (व्यक्तिगत चेक नहीं) भेज रहा हूं।

रजनीश फाउंडेशन लिमिटेड,
१७, कोरगांव पार्क, पूना—४११००१

रजनीश फाउन्डेशन : न्यूजलेटर : संन्यास

रजनीश फाउन्डेशन न्यूजलेटर : हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती में प्रकाशित आवृत्ति : पाक्षिक (एक वर्ष में २४ अंक)

सामग्री : प्रत्येक अंक में एक नवीनतम प्रवचन, आश्रम की गतिविधियों एवं रजनीश ध्यान केन्द्रों के समाचार।

हिन्दी, अंग्रेजी एवं गुजराती न्यूजलेटर में भिन्न-भिन्न प्रवचन।

एक वर्ष का सदस्यता शुल्क : रु. २४.०० (कोई भी एक भाषा में)

नमूने के लिए एक अंक का मूल्य : रु. १.२५

संन्यास : हिन्दी एवं अंग्रेजी में प्रकाशित

आवृत्ति : द्वैमासिक (एक वर्ष में छ: अंक)

सामग्री : भगवान श्री के महत्त्वपूर्ण प्रवचन, सुन्दर चित्र, दर्शन-संवाद, संन्यास के नये आयाम, ध्यान-विधियां, आश्रम एवं रजनीश ध्यान केन्द्रों के नवीनतम समाचार इत्यादि। हिन्दी एवं अंग्रेजी 'संन्यास' में भिन्न-भिन्न सामग्री।

एक वर्ष का सदस्यता-शुल्क	नमूने के लिए एक अंक का मूल्य
(हिन्दी) रु. २४.००	(हिन्दी) रु. ५.००
(अंग्रेजी) रु. ६०.००	(अंग्रेजी) रु. १०.००

विशेष :

(१) अर्ध-वार्षिक सदस्यता की सुविधा है।

(२) न्यूजलेटर या संन्यास की सदस्यता वी. पी. पी. द्वारा सम्भव नहीं है।

साहित्य-वितरण—केवल भारत के लिए

यदि आप रजनीश फाउंडेशन लि. के प्रकाशनों के वितरण में रुचि रखते हैं तो उसके लिए निम्नांकित शर्तें हैं—

(१) ६०० या उससे अधिक हिन्दी पुस्तकों के आर्डर पर ५०% छूट

(२) ६०० या उससे अधिक अंग्रेजी पुस्तकों के आर्डर पर ४५% छूट

६०० या उससे अधिक पुस्तकों में अगर हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का सम्मिलित आर्डर है तो ऐसी स्थिति में अंग्रेजी पुस्तकों पर छूट ४५% और हिन्दी पुस्तकों पर छूट ५०% होगी।

और अधिक जानकारी के लिए रजनीश फाउंडेशन लि. से सम्पर्क करें।

ध्वनि-मुद्रित (टेप्ड) प्रवचन

भगवान श्री रजनीश प्रतिदिन सुबह अपने शिष्यों के समक्ष प्रवचन करते हैं लगभग ९० मिनिट तक चलने वाले उनके प्रवचन को रिकार्ड किया जाता है और वही कैसेट के रूप में उपलब्ध हैं। प्रत्येक प्रवचन-माला में सामान्यतः १० से ३१ प्रवचन होते हैं। एक प्रवचन या पूरी प्रवचन-माला के कैसेटस खरीदे या ध्वनिमुद्रित (टेप्ड) करवाये जा सकते हैं।

टेप लायब्रेरी योजना :

भगवन श्री के ध्वनी मुद्रित प्रवचनों की टेप-लायब्रेरी पूरे देश भर में रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड द्वारा संचालित हो रही है। पूरी जानकारी के लिए रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड से सम्पर्क करें।

सम्पर्क सूत्र :

रजनीश फाउन्डेशन लिमिटेड
१७, कोरेगांव पार्क, पूना—४११००१
फोन : २८१२७, २०९८१, २०९८२
टेलेक्स : ०१४५—४२१ ताओ ● ग्राम : 'तथाता'
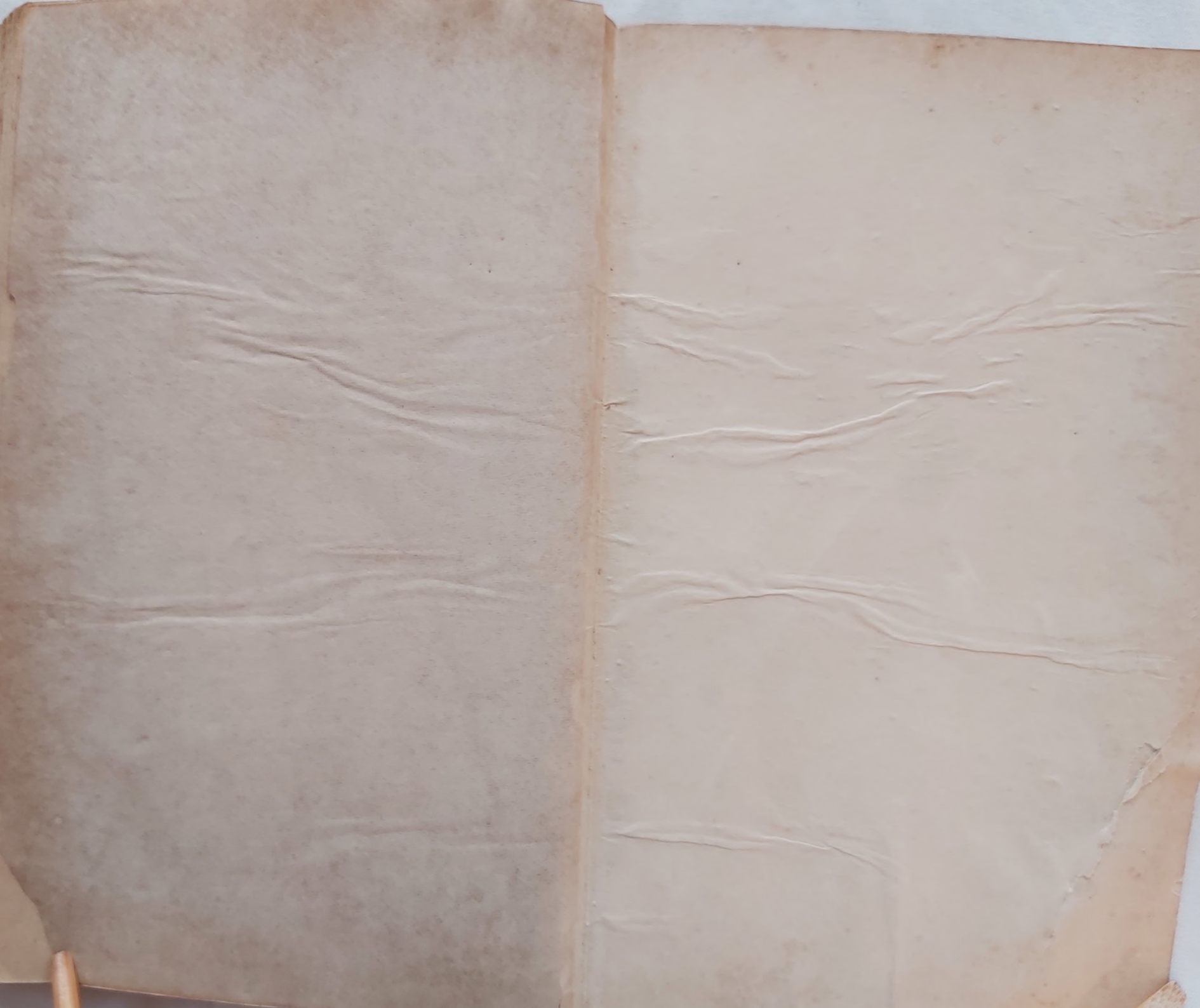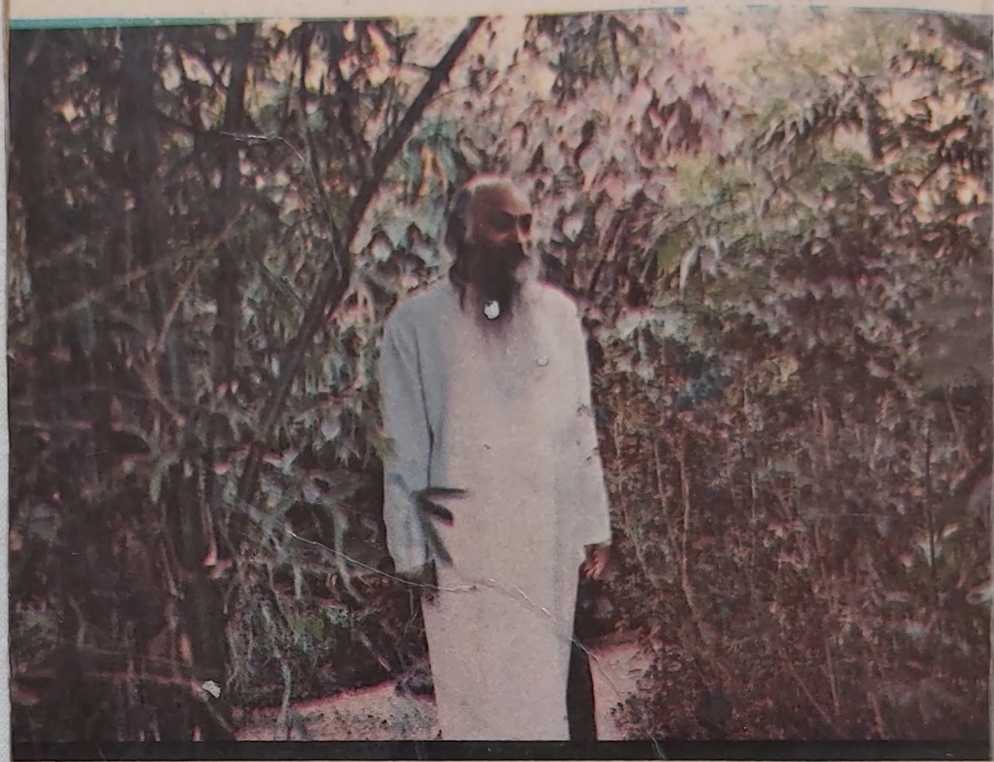
हंसिबा खेलिबा ! हंसो और खेलो । जीवन को अभिनय से ज्यादा मत समझो, खेल समझो, लीला समझो । हंसिबा खेलिबा रहिबा रंग ! और ऐसे रहो, रंग से रहो । मौज तुम्हारा जीवन हो, मौज तुम्हारी शैली हो । काम क्रोध न करिबा संग । और तभी तुम पाओगे काम क्रोध अपने से छूटने लगे, उन्होंने तुम्हारा संग छोड़ दिया । छोंड़ना भी न पड़ेगा ।

—भगवान श्री रजनीश